मन

लेखक एवं प्रकाशक

धर्मपाल कपूर

बी०ए० ऑनर्स, एम०ए०

कोठी नं. 1135, सैक्टर 11
पंचकूला-134112 (हरियाणा)
फोन : 0172-2567845
मोबाइल : 9356301618

संस्करण : 2019
प्रतियाँ : 1000

धर्मपाल कपूर
बी.ए. ऑनर्स, एम.ए.
कोठी नं. 1135, सैक्टर 11
पंचकूला-134112 (हरियाणा)
फोन : 0172-2567845
मोबाइल : 9356301618

टंकण एवं साजसज्जा : **अभिनव इंटरप्राइजिज, मो. 94683 40497, 81684 90221**
मुद्रक :

दो शब्द

भद्र आत्माओ !

इस संसार में प्रत्येक मानव अपने मन की इच्छानुसार ही कार्य करता है । अतः यह कहा जाता है कि मन ही मानव है । मानव के विचार, भावनाएँ, वृत्ति एवं स्मृति वस्तुतः मान के भाग है । अतः अंग्रेज़ी कवि मिल्टन के लिए लिखा है–

To me my mind is kingdom.

अतः मेरा मन ही मेरे लिये राज्य है ।

प्रस्तुत पुस्तक में मैंने मन की पाँच अवस्थाओं, मन के छः उपवेद, मन का स्वभाव, मानव शरीर में मन का स्थान, मन के पाँच कोश, मन को नियंत्रण करने के मुख्य उपायों का विशद विवेचन किया है । वस्तुतः मैंने प्रस्तुत पुस्तक सच्ची लगन, कठिन परिश्रम और अनेक पुस्तकों के अध्ययन एवं अनुशीलन के पश्चात् लिखी है । इसमें वर्णित मुख्य उपायों को अपनाकर प्रत्येक व्यक्ति अपने मन को सुधार सकता है और जीवन में सुख, शांति एवं आनंद प्राप्त कर सकता है । अतः इन विषयों का एक खूबसूरत गुलदस्ता मैं आप की सेवा में प्रस्तुत कर रहा हूँ । लीजिए अब आप भी इस रुहानी गुलदस्ते रूपी ''मन'' के पुष्पों को देखिए और झूम -झूम कर आनन्द विभोर हो जाएं ।

प्रस्तुतः पुस्तक के लिखने में मुझे सर्वश्री लालचंद चौहान, रोशनलाल अग्रवाल, नरेश बंसल, जयकिशन जी आदि ने सहयोग प्रदान किया है । इसके अतिरिक्त मैं उन सभी लेखकों एवं कृतिकर्ताओं का भी अत्यन्त धन्यवादी हूँ जिनकी कृतियों में से संदर्भ उद्धृत किये गये हैं । वस्तुतः बोलना सरल है परन्तु लिखना अत्यधिक कठिन । जैसेकि संस्कृत में एक उक्ति है–

शतं वद एकं मा लिख

सौ बार कहो परन्तु एक बार भी मत लिखो। क्योंकि लेखन में यदि कोई त्रुटि रह जाती है तो वह तुरन्त पकड़ी जाती है और लेखक की पोल खुल जायेगी। मैंने प्रस्तुत पुस्तक के लिखने में पूर्ण सावधानी बरती है। परन्तु संसार के प्रत्येक व्यक्ति की भाँति मैं भी अल्पज्ञ व अपूर्ण हूँ। अतः यदि कोई त्रुटि रह गई हो तो मैं पाठकगण से क्षमा चाहूँगा।

धर्म पाल कपूर

दिनांक : 7.3.2019

(**धर्मपाल कपूर**)
बी.ए. ऑनर्स, एम.ए.
कोठी नं. 1135, सैक्टर 11,
पंचकूला-134112 (हरियाणा)
फोन : 0172-2567845
मोबाइल : 9356301618

निवेदन

श्री धर्मपाल कपूर जी की 'मन' नामक पुस्तक एक अद्भुत दस्तावेज है। शरीर में मन का बड़ा भारी महत्त्व है। इस शरीर में स्थिर व्यापक विषयों को जानने वाले अन्तःकरण के सहित पाँच ज्ञानेन्द्रिय ही निरन्तर शरीर की रक्षा करते हैं। जो अन्तःकरण, बुद्धि, चित्त और अहंकाररूप वृत्ति वाला होने से चार प्रकार के भीतर प्रकाश करने वाला प्राणियों के सब कर्मों का साधक अविनाशी मन है।

मन जड़ है जैसे सूर्य भी जड़ है। परन्तु परमात्मा के प्रकाश से प्रकाशमान है। ठीक उसी प्रकार आत्मा से मन को गति प्राप्त होती है। मन चंचल है। प्रत्येक सुन्दर वस्तु की ओर ललायत हो जाता है। जब मनुष्य मन के वेग को रोक नहीं पाता तो वह पापकर्मों में लिप्त हो जाता है, तभी योग दर्शन में महर्षि पतंजलि लिखते हैं कि योग का स्वरूप क्या है?

योगश्चित्तवृत्तिनिरोधः

चित्त की वृत्तियों को रोकना ही योग है।

सांख्य योग की मान्यताओं के अनुसार समस्त जड़ जगत् तीन गुणों—सत्व, रजस् और तमस् का परिणाम है। दृश्य-अदृश्य विश्व के मूल उपादान कारक ये ही तीन गुण है, चित्त भी उन्हीं तीन मूल्यों का परिणाम हैं उनमें सत्व-प्रकाश स्वभाव, रजस्-प्रवृत्ति स्वभाव तथा तसम्-नियमन (रोकना) स्वभाव रहता है। वस्तु में जब जिस गुण का प्राधान्य रहता है, तब वही स्वभाव प्रकट में आता है। चित्त की रचना सत्व-गुण-प्रधान है, उस कारण रजस्-तमस् के उद्रेक में भी चित्त का प्रकाश स्वभाव निरन्तर बना रहता है।

हमें संसार में शान्ति चाहिये, राष्ट्र, राज्य, नगर, मोहल्ले, घर में भी शान्ति चाहिये, अशान्ति कोई नहीं चाहता। हमें मन में भी शान्ति चाहिये। बाहर की अशान्ति के कारण मन में अशान्ति उत्पन्न होती है। अशान्ति कब उत्पन्न होती है जब मन प्रकृति की चकाचौंध में फंस जाता है और मन संसार की हर सुन्दर वस्तु को प्राप्त करना चाहता है, जिसकी इच्छा हो उसकी प्राप्ति

नहीं होती तो मन अशान्त हो उठता है ।

महर्षि मतंजलि योग दर्शनकार ने अन्तःकरण को चार भागों में विभाजित किया है–1. मन, 2. बुद्धि, 3. चित्त, 4. अहंकार । मन का कार्य–संकल्प-विकल्प, बुद्धि का कार्य–निर्णय, चित्त का कार्य–संस्कारों का भण्डार, 4. अहंकार का कार्य–मैं, मेरा । चित्त में ही कर्म जनित संस्कार संगृहित होते हैं, जिनके आधार पर वृत्तियाँ बन कर चलती हैं, जो कर्म कराती है । इन्हीं वृत्तियों पर मन संकल्प-विकल्प करता है, जिन पर अहंकार का आधार बना कर बुद्धि निर्णय करती है, तब इन्द्रियों और शरीर से कर्म होता है । महर्षि ने चित्त से उठने वाली वृत्तियों का निरोध करना ही योग माना है, और बिना योग साधना के सुख-शान्ति, आनन्द की प्राप्ति नहीं हो सकती ।

साधारण भाषा में आत्मा और परमात्मा का मिलन ही योग है । आत्मा और परमात्मा में क्या अन्तर है ? परमात्मा अति शून्य होने के कारण ही आत्मा के अन्दर बैठा है । परमात्मा व आत्मा दोनों चेतनतत्त्व और अनादि हैं । परमात्मा सर्वज्ञ है, आत्मा अल्पज्ञ है । चित्तवृत्ति का निरोध क्या है ? चित्त को सांसारिक भौतिक वस्तुओं के क्षणक सुख में लिप्त न होने से मन को रोकना और परमपिता को आत्मसमर्पण करना ताकि सुख, शान्ति और आनन्द की प्राप्ति हो सके ।

श्री धर्मपाल कपूर जी द्वारा मन के विषय में लिखी गई पुस्तक में यह समझाने का प्रयास किया गया है कि मन को एकाग्र करके पाप कर्मों से रोके और ईश्वर के चिन्तन में लगाये । इस पुस्तक से मन के विषय की जानकारी प्राप्त होगी, अक्सर स्वाध्यायशील व्यक्ति ही आध्यात्मिक विषयों में रुचि रखते हैं । मुझे पूर्ण विश्वास है कि यह पुस्तक पाठकगणों का मन के विषय में सही मार्ग दर्शन करेगी और चितवृत्तियों को रोकनेमें बताये गये उपाय लाभदायक होंगे ।

मैं श्री कपूर जी का बड़ा आभारी हूँ कि जो वे अपनी पुस्तकों के प्रकाशन के कार्य में मुझे कुछ योगदान करने का शुभ अवसर प्रदान करते हैं । मैं उनकी दीर्घ आयु व निरोगता की परमपिता परमात्मा से प्रार्थना करता हूँ ।

मैं यह स्वष्ट कर देना चाहता हूँ कि मैं कोई विद्वान् नहीं हूँ परन्तु महर्षि दयानन्द के ग्रंथों के स्वाध्याय से कुछ थोड़ा सा वैदिक मान्यताओं और आर्ष ग्रंथों का ज्ञान अवश्य हुआ है जिसके आधार पर मैं श्री धर्मपाल कपूर जी के धर्म प्रयास सम्बन्धी पुस्तकों में कुछ अपना योगदान कर पाता हूँ। विद्या एक ऐसा धन है जिसे जितना खर्च किया जाये, उतना अधिक बढ़ता है। शेष धन दौलत खर्च करने पर घटती है। विद्या वेदों में है, सबको वेदों का स्वाध्याय करना चाहिये। वेद के बिना सत्य-असत्य का, पाप-पुण्य का, धर्म-अधर्म आदि का ज्ञान नहीं होता।

चंचल मन ओ३म् जप, ओ३म् जप।
पल-पल छिन-छिन नित्य ओ३म् जप।।
प्रभु का ओ३म् नाम कितना है प्यारा।
सारे ब्रह्माण्ड की जीवन धारा।।
जिसने ईश्वर को न पहचाना।
उसका जीवन व्यर्थ गवाना।।
मनुष्य जीवन न मिलता बार-बार।
पापों का सिर पर क्यों रखता है भार।।
बचे जीवन को ले अब भी सम्भाल।
अन्त में आयेगा सब कुछ खोने का मलाल।।

लाल चन्द चौहान
से.नि. राज्य विकास अधिकारी,
कोठी नं. 591, सैक्टर 12,
पंचकूला-134112 (हरियाणा)
मोबाइल : 8557057170
मोबाइल : 7508201740

विशेष सूचना

1. स्वाध्याय, मनन और आत्मसात् ।
2. पाठकगण पुस्तक पढ़ने के पश्चात् किसी भी स्वाध्यायशील मित्र को इसे देने की कृपा करें ।
3. कोई भी जिज्ञासु अपनी इच्छानुसार इसकी प्रतियाँ फोटोस्टेट करवा कर स्वाध्यायशील मित्रों में प्रचार-प्रसार के लिये बाँट सकता है ।
4. पुस्तक केवल प्रचारार्थ लिखी गई है और सदुपयोग ही इसका मूल्य है ।
5. सर्वाधिकार लेखकाधीन ।

धर्मपाल कपूर
बी.ए. ऑनर्स, एम.ए.
कोठी नं. 1135, सैक्टर 11,
पंचकूला-134112 (हरियाणा)
फोन : 0172-2567845
मो० : 9356301618

विषयसूची

क्र.सं.	विषय	पृष्ठ
1.	मन की परिभाषा	1
2.	मन के चार भाग	5
3.	स्वस्थ रहना हो तो मन को साधिये	6
4.	मन की पाँच अवस्थाएँ	8
5.	मन का सम्बन्ध	13
6.	प्राणियों के सब कर्मों का साधक अविनाशी मन	16
7.	मन का स्वभाव	18
8.	शरीर में आत्मा का स्थान	20
9.	मन के पाँच कोश	21
10.	मन को नियंत्रण करने के मुख्य उपाय	29

1. मन की परिभाषा

हम घर में बैठे होते हैं, मन लंदन से हो आता है।
हम खटिया पर सोये होते हैं, यह रवि मंडल में जाता है।।
गौरी शंकर की चोटी की लंगड़ों को सैर करवाता है।
सागर की तह में भी जाकर यह नहीं भीगने पाता है।।

श्री दौलतराम शास्त्री

वस्तुतः मन ही मानव है। क्योंकि हमारे जीवन की प्रत्येक क्रिया मन के द्वारा ही होती है। मन के निर्देश के बिना न कोई कार्य किया जाता है, न किया जा सकता है। आत्मा के जीवन-व्यापार में सब कुछ कर्त्ता-धर्त्ता यह मन ही है। वस्तुतः मन इच्छा से पैदा होता है। इसी कारण इच्छा को मन का बीज रूप कहा जाता है। इच्छा पूरी होते ही मन भर जाता है। मन एक अत्यंत सूक्ष्म तत्त्व है। मन इन्द्रियों का राजा है क्योंकि इन्द्रियाँ मन के अधीन रहती हैं और मन के बिना कोई भी इन्द्री कार्य नहीं कर सकती। प्रसिद्ध वैज्ञानिक अल्बर्ट आइंस्टीन से एक बार एक लड़के ने पूछा-

आज सारी दुनियाँ में आपका नाम है, सभी आपकी प्रशंसा करते हैं। आपको महान् कहते हैं। कृपया मुझे बताएं कि आखिर महान् बनने का मंत्र क्या है? क्या हर कोई महान् बन सकता है या आप जैसे क़िस्मत वाले लोग ही महान् बन सकते हैं?

आइंस्टीन ने इस लम्बे सवाल का जवाब सिर्फ एक शब्द में दिया, ''लगन''। ''जी, मैं कुछ समझा नहीं।'' लड़के ने भी तुरन्त प्रतिक्रिया व्यक्त की।

आईस्टीन मुस्कुरा उठे और बोले, ''जब मैं तुम्हारी उम्र का था तब गणित से बहुत डरता था। मैं अक्सर गणित में फेल हो जाता था। मुझे सज़ा मिलती थी। मेरे दोस्त मेंरे से आगे बढ़ जाते थे। वे मेरा मज़ाक उड़ाते थे। मैं मनमसोस कर रह जाता था। तुम समझ सकते हो मुझ पर क्या गुजरती

होगी । एक दिन मैंने सोचा कि मुझमें कोई कमी तो नहीं है फिर मैं गणित से क्यों घबराता हूँ? बस उस दिन के बाद मैं गणित के सवालों से जूझने लगा । बार-बार असफल हुआ ।

दोस्तों में मज़ाक का पात्र बना लेकिन धीरे-धीरे सवाल हल होने लगे । इससे मेरा उत्साह बढ़ता था मगर फिर कठिन सवाल आने पर हिम्मत छूटने लगती थी । दोनों ही स्थितियों में मैं प्रयास करना नहीं छोड़ता था । एक ही लगन थी कि मैं गणित के भय का भूत भगाकर रहूँगा । इसी लगन का यह फल है कि आज लोग मेरे सिद्धान्तों को अपनाते हैं । लगन ही मेरा गुरुमंत्र है । तुम भी इस गुरुमंत्र को कभी मत छोड़ना । उसी से तुम्हारी राह बनेगी ।

उस लड़के को इसी दिन लगन का महत्त्व पता चल गया । वह अल्बर्ट आईस्टीन को धन्यवाद करके लौट आया और उसी दिन से उसने नई लगन से पढ़ाई की शुरुआत कर दी । एक छोटे से बच्चे में भी लगन की आग जगा देने वाली यह खूबी महान् वैज्ञानिक अल्बर्ट आइंस्टीन की महानता में हमेशा चार चांद लगाती रही ।

महात्मा बुद्ध ने कहा था–

यदि एक योद्धा किसी युद्ध में हज़ार लोगों को हज़ार बार जीतता है और दूसरा अपने मन पर विजय प्राप्त करता है तो दूसरा व्यक्ति कहीं ज़्यादा बलवान् है ।

मानव मन के साथ मिलकर सुखमय, दुःखमय, हर्षमय, शोकमय, नाममय, रूपमय, क्रोधमय, भोगमय आदि हो जाता है । यह मन ही शुभमय, अशुभमय, पापमय एवं पुण्यमय है । यह मन जहाँ लगता है जिससे मिलाया जाता है, उसी में बंध जाता है । अतः यह साधना द्वारा ब्रह्ममय, शिवमय हो जाता है । जैसे कबीर ने लिखा है–

कबीरा मन तो एक है जिधर चाहे लगाय ।
चाहे प्रभु भक्ति करे चाहे विषय कमाय ।।

चित्त वासनाओं एवं इच्छाओं का पुंज है । उसमें मैं भाव का उत्पन्न

होना अपने को आत्मा से भिन्न मानना ही अहंकार है । इच्छापूर्ति के लिय जब वह विचार करता है तब उसे मन कहा जाता है । जब वह अच्छे बुरे का भेद करके निर्णय लेता है, तब उसे बुद्धि कहा जाता है । जब वह क्रियाशील होता है तो उसे शरीर कहा जाता है । स्वामी शिवानन्द ''राजयोग'' नामक पुस्तक में लिखते हैं–

Mind is a mysterious something which is really nothing but does everything

मन कुछ रहस्यपूर्ण हे जो कि वास्तव में कुछ भी नहीं करता परन्तु फिर भी प्रत्येक काम करता है ।

मैत्रेयी उपनिषद् में लिखा है–मन ही संसार है प्रयत्नपूर्वक इस मन को ही शुद्ध करना चाहिए । जिसका जैसा मन होता है, वह वैसा ही बन जाता है । शांत मन वाला व्यक्ति ही आत्मा को तथा अक्षय आनन्द को प्राप्त करता है, यही सनातन रहस्य है । मन की प्रकृति के विषय में अधोलिखित पाँच बातें उल्लेखनीय हैं–

1. मन संकल्प विकल्प करता है ।
2. मन अत्यंत सूक्ष्म एवं वेगवान है ।
3. मन सतत बिना रुके श्वास-प्रश्वास की भाँति रात-दिन कार्य करता है ।
4. बिना मन के इन्द्रियों को ज्ञान नहीं होता, न ही कर्म प्रेरणा मिलती है । मन की चिन्तन शक्ति ओत-प्रोत होती है ।
5. मन एक बार में एक कार्य में लगता है ।

हमारे शरीर में 33 प्रांत हैं– 5 कर्मेन्द्रियाँ - हाथ, पैर, वाणी, मलद्वार, और मूत्रद्वार, 5 ज्ञानेन्द्रियाँ-आँख, कान, नाक, रसना (जिह्वा) और त्वचा । ये श्रम जीवियों के विभाग हैं । प्राणों के 10 विभाग हैं । अर्थात् 5 प्राण - प्राण, अपान, समान, उदान और व्यान । 5 उपप्राण-देवदत, कृकल, कूर्म,

नाग, और धनंजय । इन 20 विभागों के अतिरिक्त 13 विभाग और हैं—वे हैं-मस्तिष्क, पीठ, दो फेफड़े, हृदय, यकृत, प्लीहा, 2 मूत्राशय, पेट, मलाशय, मन और बुद्धि । इन 33 प्रांतों का मुख्याधिकारी मन है । यही इन सबसे काम लेता है । अतः मन के वश में होने से आत्मा स्वयमेव वश में हो जाती है । अतः मन को मानव शरीर का प्रधान मंत्री और आत्मा को राष्ट्रपति कहा जाता है ।

मन में जैसी स्वीकृति होगी उसकी वैसी ही प्रकृति एवं प्रवृत्ति होगी । जहाँ व्यक्ति का मन होता हे वही व्यक्ति होता है । जैसे—गीध का शरीर भले ही आकाश में हो परन्तु उसकी दृष्टि पृथ्वी पर होती है । अतः वह पृथ्वी पर ही होता है । इसी प्रकार चकोर भले ही पृथ्वी पर रहता है, परन्तु उसकी दृष्टि चन्द्रमा पर होती है । अतः वह चन्द्रमा पर ही होता है ।

(2) मन के चार भाग

मन के निम्नलिखित चार भाग होते हैं । इनको टीम (Team) भी कहा जाता है–

(1) विचार (Thoughts)

(2) भावनाएँ (Emotions)

(3) वृत्ति (Attitude)

(4) स्मृति (Memory)

सारे विचार मन में ही उत्पन्न होते हैं । मन ही संकल्प-विकल्प करता है । जब वह किसी कार्य के करने के लिये निर्णय करता है तो वह बुद्धि कहलाती है । जब कोई क्रिया करता है तो वह अहंकार कहलाता है । मन, बुद्धि, चित्त और अहंकार इन्हें अन्तःकरण चतुष्टय के नाम से पुकारा जाता है । ये आत्मा की शक्तियाँ हैं । सुख-दुःख की अनुभूति भी मन ही करता है । काम, क्रोध, लोभ, मोह, अहंकार मन की वृत्तियाँ हैं न कि आत्मा की ।

(3) स्वस्थ रहना हो तो मन को साधिये

अध्यात्मशास्त्रों में मन को ही बंधन और मोक्ष का कारण बताया गया है। मनोवेत्ता भी इस तथ्य से परिचित हैं कि मन में अभूतपूर्व गति, दिव्यशक्ति, तेजस्विता एवं नियंत्रणशक्ति है। इसकी सहायता से ही सब कार्य होते हैं, मन के बिना कोई कर्म नहीं हो सकता। भूत, भविष्य और वर्तमान सब मन में ही रहते हैं। ज्ञान, चिंतन, मनन, धैर्य आदि इसके कारण ही बन पड़ते हैं। परिष्कृत मन जहाँ अनेक दिव्य क्षमताओं का भंडार है, वही विकृत मनःस्थिति रोग-शोक एवं आधि-व्याधि का कारण बनती है। आध्यात्मिक साधनाएँ, योग, तप आदि मन को साधने एवं परिष्कृत करने के विविध उपाय हैं।

महर्षि पतंजलि ने योगदर्शन में चित्तवृत्तियों के निरोध को योग कहा है। अनियंत्रित, अस्त-व्यस्त और भ्रांतियों में भटकने वाली मनःस्थिति को मानवी क्षमताओं के अपव्यय एवं भक्षण के लिए उत्तरदायी बताया और इसे दिशा विशेष में नियोजित रखने का परामर्श भी दिया है। गीताकार ने भी मन को ही मनुष्य का मित्र एवं शत्रु माना है और इसे भटकाव से उभारकर अपना भविष्य बनाने का परामर्श दिया है। इस संदर्भ में महर्षि वशिष्ठ का कहना है कि जिसने मन को जीत लिया उसे त्रैलोक्य विजेता कहना चाहिए। इन प्रतिपादनों से एक ही संकेत मिलता है कि मनोदश की गरिमा शारीरिक स्वस्थता से भी बढ़कर मानी जाये और समझा जाए कि अनेकानेक समस्याओं के उद्‌भव एवं समाधान का आधार इसी क्षेत्र की सुव्यवस्था पर निर्भर है।

इस संदर्भ में सुप्रसिद्ध मनोविज्ञानी हेक ड्यूक ने अपनी खोजपूर्ण पुस्तक "Mind and Health" में शरीर पर पड़ने वाले मानसिक प्रभाव का सुविस्तृत पर्यवेक्षण प्रस्तुत किया है। उनका निष्कर्ष है कि शरीर पर आहार के व्यतिक्रम का प्रभाव तो पड़ता ही है, अभाव व पोषक तत्त्वों की कमी भी अपनी प्रतिक्रिया छोड़ती है। काया पर सर्वाधिक प्रभाव व्यक्ति की अपनी मनः स्थिति का पड़ता है। यह प्रभाव नाड़ीमंडल पर 36 प्रतिशत, अंतः स्रावी हार्मोन ग्रंथियों पर 56 प्रतिशत एवं मांसपेशियों पर 8 प्रतिशत पाया गया है।

अनुसंधान कर्त्ता चिकित्सा विज्ञानियों ने अनेक रोगियों का पर्यवेक्षण करने के पश्चात् निष्कर्ष निकाला है कि कोई ऐसा स्थूल कारण नहीं ढूँढा जा सका, जिसके कारण उन्हें गंभीर रोगों का शिकार बनना पड़े, फिर भी वे अनिद्रा, अपच, उच्च रक्तचाप, हिस्टीरिया, कैंसर, कोलाइटिस, हृदयरोग जैसी घातक बीमारियों से ग्रस्त पाये गये। सबसे खास बात यह देखी गई कि किसी भी औषधि उपचार से उन्हें कोई राहत नहीं मिली। देखा गया कि जब मनोवैज्ञानिक तरीके से उनका चिंतन प्रवाह मोड़ा गया तो सकारात्मक परिणाम सामने आए। बिना औषधि उपचार से ही वे बहुत कुछ स्वस्थ हो गये।

आज की प्रचलित समस्त उपचार विधियों पैथियों एवं नवीनतम औषधियों के बावजूद नाना प्रकार के रोगों की बाढ़ सी आई हुई है। श्री हेक के अनुसार ऐसी परिस्थिति में रोगनिवारण का सबसे सस्ता, सुनिश्चित और हानिरहित निर्धारण करना होगा। इसके लिए रोगोत्पत्ति के मूल कारण मनःस्थिति की गहन जांच पड़ताल करके तदनुरूप उपाय, उपचार अपनाने पर ही रुग्णता पर विजय पाई जा सकती है। अब समय आ गया, जब आशा, श्रद्धा अर्थात आत्मविश्वास, इच्छाशक्ति एवं स्वसंकेत जैसे प्रयासों को स्वास्थ्य संवर्द्धन के क्षेत्र में प्रयोग किया जाना चाहिए। मन की अतल गहराई में प्रवेश करके दूषित तत्त्वों की खोजबीर कर, उन्हें निकाल बाहर करने में यही तत्त्व समर्थ हो सकते हैं, अन्य कोई नहीं।

शारीरिक व्याधियों और मानसिक व्याधियों से छुटकारा पाने एवं अवांछनीय आदतों के कारण उत्पन्न होती रहने वाली विषम परिस्थितियों से निपटने के लिए परिष्कृत मनोभूमि चाहिए। महामानवों में से प्रत्येक को अंतःचेतना की उत्कृष्टता का किसी न किसी प्रकार अर्जित करना ही पड़ा है। बलिष्ठता के लिए व्यायाम विद्वत्ता के लिए अध्ययन, उपार्जन के लिए पुरुषार्थ की जिस प्रकार आवश्यकता पड़ती है, उसी प्रकार मनस्वी बनने के लिए योगाभ्यासपरक तपसाधना का विचारपरिष्कार का अभ्यास आवश्यक है।

(4) मन की पाँच अवस्थाएँ

इस संसार में जितने प्राणी हैं उन सभी के मनों को अधोलिखित पाँच अवस्थाओं में विभाजित किया जा सकता है–

1. मूढ़ावस्था – इसमें मन किसी भी कार्य को करने का निर्णय नहीं कर सकता। ऐसी अवस्था में मानव मूर्खों की भाँति बातें करता रहता है। ऐसे व्यक्ति के लिये वेद का आदेश व उपदेश कुछ भी महत्त्व नहीं रखते, क्योंकि वह शरीरासक्त होता है। इस अवस्था से मन में न किसी ज्ञान का उदय होता है और न किसी काम में व्यक्ति की रुचि होती है। यह मन की तामसिक अवस्था होती है। प्रस्तुत अवस्था में त्रिविध गुणों का तारतम्य इस प्रकार से होता है।

1. सतोगुण = ½ भाग

2. रजोगुण = 1½ भाग

3. तमोगुण = तीन भाग

इस अवस्था में आलस्य, निद्रा, शरीर आदि विपेक्ष एवं तत्सहभावी, दौर्भनस्य, गुरुत्त्व प्रसाद आदि उपद्रवों की प्रवृत्ति होती है। ऐसा व्यक्ति मांस, शराब व्याभिचार आदि में डूबे रहना अपनी शान समझता है।

2. क्षिप्तावस्था – इसमें मन बँटा हुआ रहता है। ऐसे व्यक्ति के लिये वेद के आदेश व उपदेश कुछ भी महत्त्व नहीं रखते, क्योंकि वह इन्द्रियासक्त होता है। ऐसा व्यक्ति समझता है कि दुनियाँ में केवल उसे अक़्ल है–एक मेरे पास और आधी सबमें बँटी हुई। इसमें मन चंचल रहता है, व्यक्ति को इधर-उधर विचलित करता है। यह मन की राजसिक अवस्था होती है मनोविज्ञानियों का अनुमान है कि मन में एक दिन में 66,400 विचार आते हैं। इस अवस्था में त्रिविध गुणों का तारतम्य इस प्रकार से होता है।

1. सतोगुण = ½ भाग

2. रजोगुण = 1½ भाग

3. तमोगुण = 1 भाग

3. विक्षिप्तावस्था – इस अवस्था में मन व्याकुल रहता है। ऐसे व्यक्ति के लिये वेद का क्या प्रयोजन है? यथार्थ में इस प्रकार के लोगों के लिये ही

मानव शब्द सार्थक होता है । इस अवस्था में मन राजसिक एवं तामसिक दोनों दृष्टियों से युक्त होता है । इस अवस्था में त्रिविध गुणों का तारतम्य इस प्रकार से होता है ।

1. सतोगुण = ½ भाग

2. रजोगुण = ½ भाग

3. तमोगुण = एक भाग

मन की ये तीनों अवस्थाएँ योग पूर्व की है ।

4. एकाग्रावस्था – इसमें मन नियंत्रण में रहकर निपुणता से कार्य करता है । यही जीवन में सफलता की कुंजी है । इस अवस्था में त्रिविध गुणों का तारतम्य इस प्रकार होता है ।

1. सतोगुण = 2 भाग

2. रजोगुण = ½ भाग

3. तमोगुण = ½ भाग

इस अवस्था में रजोगुण एवं तमोगुण की मलजनित अशुद्धि को एवं विकृति को छोड़कर ही सत्व के साथ सम्बद्ध रहते हैं । इसमें मन व पुरुष आत्मा के भेद का ज्ञान विवेक हो जाता है ।

5. निरुद्धावस्था – इसमें मन शांत एवं संतुष्ट रहता है । ऐसे व्यक्ति सम्पूर्ण प्रज्ञा का मन होता हैं ऐसे योगी के लिये शास्त्र का कोई प्रयोजन नहीं रह जाता है । आदि शंकराचार्य लिखते हैं–**विज्ञातेऽपियरे तत्वे शास्त्र-धी-विस्तु निष्फला** परम तत्त्व के बोध हो जाने पर शास्त्रीय बुद्धि की उपयोगिता नहीं रह जाती । स्वामी चिन्मयानंद ''विवेक चूड़ामणि' में लिखते हैं–**मन जितना शांत होता है, प्रसन्नता भी उसी अनुपात में मिलती जाती है ?**

इन पाँचों अवस्थाओं में मन पारे की भाँति ऊपर नीचे चलता है । मरकट की भाँति विभिन्न शाखाओं पर उठता-बैठता रहता है । भँवरे की भाँति एक फूल से दूसरे फूल पर भागता रहता है । अतः अब प्रश्न उठता है कि विषयी कौन है ? जो शब्द, रूप, रस, स्पर्श और गंध को प्राप्त करने के

लिये लालायित है । तुलसीदास जी ने लिखा है–

अलि पतंग गजमीन मृग जर एक-एक आँच ।
तुलसी ते कैसे बचें जिनके लागे पाँच ।।

भँवरा, पतंगा, हाथी, मछली और मृग ये सब एक-एक विषय के शौकीन हैं । जैसे भंवरा गंध का, पतंगा रूप का, हाथी स्पर्श का, मछली रस की और मृग शब्द का शौकीन है । ये एक-एक रस को प्राप्त करने के लिये अपने को समाप्त कर देते हैं । परन्तु यह बेचारा मानव क्या करे जिसको को तो ये पाँचों जुड़े हुए हैं । मानव को ये पाँचों चाहिये । इन पाँचों से जो व्यक्ति पीड़ित है वह विषयी है । जब व्यक्ति इन पाँचों के थपेड़े खाकर हार जाता है तभी वह संसार के सारे भोगों से निराश हो जाता है । इसके पश्चात् उसमें विषाद का जागरण हो जाता है । तभी वह विषयी न रहकर साधक बन जाता है । जब तक व्यक्ति को विषाद नहीं होता और संसार के सारे भोगों का रस मिल रहा है, चाह अभी बनी हुई है तो व्यक्ति को साधक नहीं कहा जा सकता । तुलसीदास जी ने ''विनय पत्रिका'' में लिखा है–

मेरो मन हरिजू । हट न तजै ।
निसिदिन नाथ देउँ सिख बहु विधि, करत सुभाऊ निजै ।।1।।
ज्यों जुबती अनुभवति प्रसव अति दारुन दुःख उपजै ।
ह्वै अनुकूल बिसारि सूलसठ, पुनिखह पतिहिं भजै ।।2।।
लोलुप भ्रम गृहपसु ज्यौं जहँ तहँ सिर पदत्रान बजै ।
तदपि अधम बिचरत तेहि मारग कहबुँ न मूढ़ लजै ।।3।।
हौं हारयो करि जतन विविध विधि अति सै प्रबल अजै ।
तुलसिदास बस होइ तबहिं जब प्रेरक प्रभु बराजै ।।4।। पदसंख्या 89

हे प्रभु ! मेरा मन हठ नहीं छोड़ता । रात दिन इसे समझाता हूँ लेकिन यह अपने स्वभाव की ओर ही दौड़ता है । इसके लिये उन्होंने दो उदाहरण प्रस्तुत किये हैं जैसे एक युवती को जब संतान उत्पन्न होने लगती है तो उस समय वह अत्यंत पीड़ा में होती है । वह रोती और चिल्लाती है कि अब पुनः

इस पति को नहीं देखना जिसके द्वारा मुझे घोर पीड़ा मिल रही है । परन्तु उस पीड़ा से मुक्त होने के थोड़े दिन पश्चात् ही पुनः उसी मार्ग पर चल पड़ती है । फलतः फिर वही पीड़ा और दुःख । दूसरा उदाहरण उन्होंने दिया कि जैसे लोभी कुत्ता जहाँ जाता है, वहीं उसके सिर पर जूते पड़ते हैं, अनेक बार जिनसे सुख की कामना की है उन्होंने इसे कष्ट दिया है, फिर भी यह उधर ही दौड़ता है । हे प्रभो ! मैं तो अनेकों प्रयत्न करके हार गया, यह मेरे बस का नहीं । अब आप ही कृपा करे तो शायद यह शांत हो जाये । इस प्रकार जो स्वयं को प्रभु के समर्पित कर दे उसे साधक कहते हैं । जिस दिन से आपने अपने दुःख को, दुःख के कारण को देखना आरम्भ किया है, उसी दिन से आप साधक हैं, परन्तु जब तक उससे वैराग्य नहीं होता तब तक आप विषयी हैं । विषयी के बाद साधक और साधक के बाद सिद्ध बन जाते हैं ।

मनुश्री तरुणसागर ने कितना सुन्दर लिखा है–

रे चपल मन ! तू चंचल कितना जितना कि बंदर ।
वायु की भाँति, अत्र-तत्र-सर्वत्र बे रोक-टोक विचरता ।
सुखाभास का भ्रम, तुझे जीवन भर छलता ।
आशा बांधता, पास बुलाता, जीवन-धन सम्पदा हर लेता,
फिर रोता, फिर चिल्लाता, पर
अब क्या होगा जब चिड़िया चुग गई खेत ।
अब भी है अवसर एक ।
बन संन्यासी और रह निज में मग्न,
रे चपल मन ! कर तू अर्हत् का भजन । –चपल मन पृ. 11

अतः किसी भी उपाय के द्वारा मन की आसक्तियों का भंजन कीजिये । यही सच्ची साधना है । अतः धन्य हैं वे व्यक्ति, जिन्होंने मन की चंचलता एवं चपलता को विजय कर लिया । यह तभी हो सकता है यदि आप मन को शिष्य बनाकर रखोगे और स्वयं इसके गुरु बन जाओगे ।

पौराणिक भाई रामायण और गीता को तो मानते हैं, परन्तु रामायण और गीता की नहीं मानते । आर्यसमाजी भाई वेद और सत्यार्थप्रकाश को तो

मानते हैं, परन्तु वेद और सत्यार्थ प्रकाश की नहीं मानते । ईसाई भाई बाइबल को तो मानते हैं, परन्तु बाइबल की नहीं मानते । मुसलमान भाई क़ुरान को तो मानते हैं, परन्तु क़ुरान की नहीं मानते । इसी प्रकार सिक्ख भाई गुरुग्रंथसाहिब को तो मानते हैं, परन्तु गुरुग्रंथसाहिब की नहीं मानते । अब प्रश्न उठता है कि ये सब किस की मानते हैं । वस्तुतः ये सब मन की मानते हैं । इन्हें किसी की माननी चाहिये । ये श्रुति की माने, यदि श्रुति की न माने तो स्मृति की माने, यदि स्मृति की नहीं मानते तो महापुरुषों की माने, यदि महापुरुषों की भी नहीं मानते तो अपने आत्मा की माने । तभी इनका मन सुखी रह सकता है । क्योंकि हम उपदेश देते हैं, टन भर, सुनते हैं मन भर, अमल करते हैं कण भर । हमारी कथनी-करनी, चर्या-चर्चा, उच्चारण-आचरण में अन्तर है । यह नहीं होना चाहिये । तभी जीवन में सुख शान्ति एक आनन्द की वृष्टि होगी ।

अतः हमें चाहिये कि हम श्रुति की माने, यदि श्रुति की न मान सके तो स्मृति की माने, यदि स्मृति की भी नहीं मान सकते तो महापुरुषों की मानें । तभी हम अपने मन को शिष्य बनाकर सुखमय जीवन व्यतीत कर सकते हैं ।

वस्तुतः समग्र वासनाओं का विनाश हो जाने पर ही आत्मज्ञान होता है । मन पर विजय पाने बिना वासनाओं की ज्वाला को कभी भी शांत नहीं होती है और वासना रूपी ज्वाला को शंत किये बिना मन पर विजय पाना सम्भव नहीं है । यदि मन बीज है, तो मानव की वासनाएँ वृक्ष हैं । जब तक आत्मज्ञान नहीं होता, तब तक मन की चंचलता एवं चपलता पर नियंत्रण नहीं किया जा सकता है । अतः वासना, मन एवं आत्मज्ञान में आपसी संबंध है । जिस व्यक्ति ने अपने मन को वश में कर लिया, वह ज्ञानी सुख व दुःख में समान रहता है । मन की प्रवृत्तियाँ उसे प्रभावित नहीं कर सकती हैं । आध्यात्मिक रत्न का हरण जिसने किया है, वह मन तो चोर ही है । इस कारण मनरूपी चोर को पकड़कर और धमका कर आध्यात्मिक रत्न पर अधिकार करना होगा । उस रत्न को प्राप्त कर लेने वाला ही ब्रह्म को प्राप्त करता है ।

(5) मन का सम्बन्ध

हमारा मन आधि, व्याधि और उपाधि से सदा जुड़ा रहता है ।

(1) आधि का अर्थ है पदार्थों का अभाव और उनके अभाव से दुःख का होना । इसके अतिरिक्त मानसिक रोगों जैसे काम, क्रोध, लोभ, मोह, अहंकार का होना आदि ।

(2) व्याधि का अर्थ है शरीर के रोगों का होना जैसे रोग से सौंदर्य का कुरुपता में बदल जाने का भय होना । इस कारण भी मन दुःखी होता है ।

(3) उपाधि का अर्थ है, पदार्थों का मिल जाना परन्तु वे अपनी रुचि के अनुसार अनुकूल नहीं हैं । ये पदार्थ सदा ही हमारे पास रहें ।

अतः मन तैसा सोचता है वाणी जैसा कहती है शरीर वैसा करता है ।

इसलिये उपासक प्रार्थना करता है – **तन्मे मनः शिवसंकल्पमस्तु** मेरा मन शिव संकल्प वाला हो । –यजु. 34.1

आदि शंकराचार्य भी लिखते हैं – **तीर्थ परं किं स्वमनो विशुद्धम्** शुद्ध और पवित्र मन ही सबसे बड़ा तीर्थ है ।

गुरु रविदास जी ने कितना सुन्दर कहा है **जो मन चंगा तो कठौती में गंगा ।** अतः साधक का मन जिस अनुपात में शिव संकल्प होता जायेगा, उसी अनुपात में उसका मन उसके वश में होता जायेगा । इसके विषय में स्वामी रामतीर्थ के जीवन का एक घटना का वर्णन इस प्रकार किया जाता है ।

एक महात्मा थे । किसी घर में भिक्षा माँगने गये । घर की देवी ने भिक्षा दी और हाथ जोड़कर बोली–''महात्मा जी, कोई उपदेश दीजिये ।''

महात्मा ने कहा–''आज नहीं, कल उपदेश दूँगा ।''

देवी ने कहा–''तो कल भी यहीं से भिक्षा लीजिये ।''

दूसरे दिन जब महात्मा भिक्षा लेने के लिये चलने लगे तो अपने कमण्डल में कुछ गोबर भर लिया, कुछ कूड़ा कंकर । कमण्डल लेकर देवी के घर पहुँचे । देवी ने उस दिन बहुत अच्छी खीर बनाई थी उनके लिए । उसमें बादाम और पिस्ते डाले थे । महात्मा ने आवाज़ दी–ओ३म् तत् सत् ।''

देवी खीर का कटोरा लेकर बाहर आई । महात्मा ने अपना कमण्डल आगे कर दिया । देवी उसमें खीर डालने लगी तो देखा कि वहाँ गोबर और कूड़ा भरा पड़ा है । रुककर बोली–''महाराज, यह कमण्डल तो गंदा है ।''

महात्मा ने कहा–''हाँ गंदा तो है । इसमें गोबर है, कूड़ा है, परन्तु अब करना क्या है । खीर भी इसी में डाल दो ।''

देवी ने कहा–''नहीं महाराज ! इसमें डालने से तो खीर खराब हो जायेगी । मुझे दीजिये यह कमण्डल, मैं इसे शुद्ध कर लाती हूँ ।''

महाराज बोले–''अच्छा माँ, तब डालेगी खीर, जब कूड़ा-कंकर साफ हो जाये ?''

देवी बोली –''हाँ'' !

महात्मा बोले–''यही मेरा उपदेश है । मन में जब तक चिन्ताओं का कूड़ा-कर्कट और बुरे संस्कारों का गोबर भरा है, तब तक उपदेश के अमृत का लाभ नहीं होगा । उपदेश का अमृत प्राप्त करना है तो इससे पूर्व मन को शुद्ध करना चाहिये, चिन्ताओं को दूर कर देना चाहिये, बुरे संस्कारों को समाप्त कर देना चाहिये । तभी ईश्वर का नाम वहाँ चमक सकता है और तभी सुख और आनन्द की ज्योति जाग उठती है ।''

शरीर मन और आत्मा का एक दूसरे से गहरा संबंध है । शरीर दीपक है, मन तेल है और आत्मा उसकी बात्ती है । अतः इन तीनों के मेल से दीपक जलता है । आत्मा शुद्ध है यदि मन अशुद्ध होता है । तभी आत्मा अशुद्ध होती है । वस्तुतः मन साँप के समान होता हैं यदि साँप कहीं दिखाई देता है तो वह विष उगलता है । इसके विपरीत यदि पिटारे में रहता है तो वह दूध पीता है । इसी प्रकार यदि व्यक्ति का मन नियंत्रण नहीं रहेगा तो वह विष उगलेगा और यदि नियंत्रण रहेगा तो दूध उगलेगा । अतः मन को सदा नियंत्रण में रखिये ।

मन के शान्त हुये बिना सुख, शांति और आनन्द की अनुभूति नहीं हो सकती है । शरीर की सारी क्रियाओं को देखो इनका कर्त्ता मन ही है । एक हिन्दी कवि ने लिखा है–

जिस ने जीता आप को, जीते सब संसार ।

जो नर हारा आप से, उस की निश्चय हार ।।

अतः अपने मन को जंगल मत बनाओ । अपितु सुन्दर उद्यान बनाओ ।

तभी वहाँ पर बुलबुलें आयेंगी। मयूर नृत्य करेंगे, कोयल कूकू करेगी। साहित्यकार सुन्दर साहित्य का सृजन करेंगे। इस प्रकार आपका मन प्रसन्नता से प्रफुल्लित हो उठेगा। मन के विषय में डॉ. बलदेव सहाय कृत एक कविता इस प्रकार है–

रे मना ! हो जा कुछ पल मौन,
देख सकूँ मैं जो है जैसा, समझ सकूं मैं कौन ?
फूल देख फूला न समाता,
रूप देख उसमें रम जाता,
यह पा लूं मैं, वह मिल जाता,
आपा धापी मैं भरमाता।
सब कुछ हो जाता मन मंडित,
सच्चाई हो जाती खण्डित
राग-द्वेष से होकर रंजित,
हो जाते हम सुख से वंचित।
जो जैस है, वैसा देखो,
मानव को बस मानव देखो।
नाम- रूप का भेद-भेदकर,
हो पाए तो समता देखो।
तूने मुझको खूब नचाया,
विषयों के पीछे दौड़ाया।
चिंता-चिंतन समय गंवाया,
अब तक तूने राज किया है,
अनुचर मुझ को बना दिया है
अब मैं तुझ पर राज करूँगा
यह मैंने संकल्प किया है।

(6) प्राणियों के सब कर्मों का साधक मन

जो अन्तःकरण, बुद्धि, चित्त और अहंकाररूप वृति वाला होने से चार प्रकार के भीतर प्रकाश करने वाला प्राणियों के सब कर्मों का साधक अविनाशी मन है। उसको न्याय और सत्याचरण में प्रवृत्त करके पक्षपात, अन्याय और अधर्माचरण से निवृत्त करना चाहिये। जिस परमेश्वर ने भूमि अन्तरिक्ष और सूर्यरूप करना चाहिये। जिस परमेश्वर ने भूमि अन्तरिक्ष और सूर्यरूप करके तीन प्रकार के जगत् को बनाया, सबको धारण किया और रक्षित किया है, उस इष्ट देव परमपिता में मन की वृत्तियों को रोक कर ध्यान लगाना चाहिये।

इस शरीर में स्थिर व्यापक विषयों को जानने वाले अन्तःकरण के सहित पाँच ज्ञानेन्द्रिय ही निरन्तर शरीर की रक्षा करते हैं और जब जीव सोता है तब उसी को आश्रय कर तमोगुण के बल से भीतर को स्थिर होते किन्तु बाह्य विषयों का बोध नहीं कराते और स्वप्नावस्था में जीवात्मा की रक्षा में तत्पर तमोगुण से न दबे हुए प्राण और अपान जागते हैं अन्यथा यदि प्राण अपान भी सो जावें तो मरण का ही सम्भव करना चाहिये।

वस्तुतः बड़ा तो वह है जिसने इच्छाओं का परित्याग कर दिया। जिस ने मन व इन्द्रियों को वश में कर लिया, जिससे संसार की ममता से मन को मोड़ कर उसको सदा के लिये प्रभुसमर्पण कर दिया, क्योंकि संसार के भोग्य पदार्थों में सुख नहीं। हम देखते हैं कि जिस प्रकार कुत्ता सूखी हड्डी चबाते समय अपने ही दाँतों से निकले हुए रक्त को हड्डी से निकला हुआ रक्त समझकर सुखी होता है, उसी प्रकार संसार के भोग्य पदार्थों को प्राप्त कर शांत होने से अनुभव होने वाले सुख को मन ऐसा ही समझ लेता है कि यह सुख भोग से मिला है। इसके विषय में एक कवि ने लिखा है–

मन रे ! तज आलस प्रमाद
पल पल जीवन बीता जाय,
समय न कर बर्बाद ।
प्रभु कृपा से नर तन पाया
ईर्ष्या-द्वेष में यूँ ही गँवाया । ।
छोड़ के सब वैरागी होजा,
कर ले प्रभु को याद ।
मत तज आलस प्रमाद ।

(7) मन का स्वभाव

ईच्छाएं सदा बढ़ती हैं । यदि एक इच्छा की पूर्ति हो जाती है तो अनेक इच्छाएँ और पैदा हो जाती हैं । जैसे नत्था सिंह ''निर्दोष'' लिखते हैं–

आसां कदे बंदे दिया हुंदिया न पूरियां,
कलपदा बथेरा फिर वी रैहंदिया अधूरिया ।
नत्थासिंह सब संतोष नाल जी लै तूं,
रूखी मिसी खाके ते ठंडा पानी पी लै तूं ।

इसके विपरीत आयु सदा घटती हे अतः एक कवि के शब्दों में–

जितनी बढ़ती है उतनी घटती है ।
ज़िन्दगी खुद ब खुद कटती है ।।
परन्तु विधि का विधान न घटता है और न बढ़ता है ।

मन सदा ही नाना प्रकार की कल्पनायें इच्छाएँ एवं लालसायें करता रहता है, क्योंकि साधारणतः इसमें संकल्प विकल्प होता रहता है । अतः मन के विषय में एक कवि ने कितना सुन्दर लिखा है–

मन लोभी मन लालची, मन चंचल मन चौर ।
मन के मत चालिये नहीं, पलक पलक मन और ।।

महात्मा बुद्ध ने मन के विषय में लिखा है–

मन ही सब कुछ है । मन के द्वारा ही सारे कार्य होते हैं ।

परन्तु हमें विवेकपूर्ण यह सोचना चाहिये कि मन जो मज़ा ले रहा है, कल को यह मज़ा हमारे लिये कज़ा भी बन सकता है । एक शब्द है–अंतःकरण, इस शब्द का निर्माण अंतः और करण से हुआ है, जिस का अर्थ है भीतरी साधन । अंतः करण के चार कर्म व्यापार हैं–मन, बुद्धि, चित्त

और अहंकार । देखने में ये चार हैं वस्तुतः ये प्रथक्-पृथक् नहीं हैं, अपितु ये मन के चार रूप हैं—जैसे एक व्यक्ति किसी का पिता होता है, किसी का पुत्र होता है, किसी का भाई होता है और किसी का पति होता है, परन्तु व्यक्ति तो वह एक ही है ।

ईश्वर की उपासना

जो मनुष्य कर्म, उपासना और ज्ञान सम्बन्धी विद्याओं का सम्यक् ग्रहण कर सम्पूर्ण ऐश्वर्य से युक्त परमात्मा के साथ अपने आत्मा को युक्त करते हैं तथा अधर्म अनैश्वर्य और दुःख रूप मलों को छुड़ा कर धर्म ऐश्वर्य और सुखों को प्राप्त होते हैं । उनको अन्तर्यामी जगदीश्वर आप ही धर्म के अनुष्ठान और अधर्म का त्याग कराने को सदैव चाहता है । हम लोग यथार्थ प्रकार से इस बात को नहीं जानते कि वह ईश्वर किस युक्ति से हमको प्रेरणा करता है कि जिस के सहाय से ही हम लोग धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष को सिद्ध करने को समर्थ हो सकते हैं ।

(8) शरीर में आत्मा का स्थान

वस्तुतः मन हृदयकाश में स्थित है अर्थात् छाती और पेट के मध्य, हृदय देश में दशांगुल हृदयकाश है, वहाँ पर आत्मा स्थित है। परन्तु शिवानंद जी महाराज मन के विषय में अपनी पुस्तक Mind its mysteries and Control में लिखते हैं।

The seat of mind in deep sleep is heart, in dream, the seat of the mind is neck, in walking state, the seat of the mind is the right eye. P-17

गहन निन्द्रा में मन का स्थान हृदय में होता है, स्वप्न में यह मन का स्थान नाक होता है और जागृत अवस्था में मन का स्थान दाईं आँख में होता है।

मन एक समय में केवल एक ही काम को कर सकता है। इसके विषय में स्वामी शिवानंद जी महाराज ने अपनी पुस्तक **Mind is mysteries and control** में सत्य लिखा है –

Mind can do only one thing at a time.

मन सदा एक ही बार में एक ही काम कर सकता है।

(9) मन के पाँच कोश

मानव शरीर में मन के साथ 5 कोश भी होते हैं, परन्तु ये दिखाई नहीं देते हैं, जैसे एकसरे में हड्डी का फ्रैक्चर तो देखा जा सकता है, परन्तु हड्डी टूटने से जो दर्द होता है, उसे नहीं देखा जा सकता। मन के साथ इन कोशों का गंभीर संबंध है। अब अधोलिखित पंक्तियों में इन कोशों पर संक्षिप्त प्रकाश डाला जायेगा–

1. अन्नमय कोश– इस का स्थूल शरीर (Physical body) के नाम से भी पुकारा जाता है। माता-पिता की सन्तानोत्पत्ति शक्ति से अन्नमय कोश की उत्पत्ति होती है, यह सुख-दुःख और भोग की स्थान है। इसे जन्म-मरण लगा रहता हैं इसमें रहते हुए आत्मा की शारीरिक शक्ति दिखने लगती है। परन्तु आत्मा इससे अलग है। आत्मा कभी मरता नहीं, अनादि है। केवल शरीर बदलता है।

2. प्राणमय कोश– शरीर में प्राणों का होना भी परमावश्यक है। इसके अन्तर्गत 10 प्राण हैं। प्राण से ही भविष्यत और वर्तमान है। सभी कुछ प्राण में प्रतिष्ठित है। प्राण तत्त्व सारे ब्रह्माण्ड में सदा नियामक है और सदा रहेगा। शरीर से प्राण शक्ति निकल जाने पर शरीर मृत हो जाता है।

3. मनोमय कोश– इसका निर्माण 16 तत्त्वों, 5 कर्मेन्द्रियाँ, 5 ज्ञानेन्द्रियाँ, 5 तन्मात्रायें और मन से हुआ है। इसका प्रधान अंग मन है। मन चंचल है इसलिए ईश्वर से प्रार्थना की जाती है कि आपकी कृपा से मेरा मन दूसरो के लिए कल्याणकारी हो। किसी से भी किसी प्रकार की द्वेष-भावना, लोभ, लालच आदि हम में न आये।

4. विज्ञानमय कोश– इसका मुख्य तत्त्व बुद्धि है, इसको सूक्ष्म शरीर (Astral body) के नाम से भी पुकारा जाता है। यह पाँच ज्ञानेन्द्रियाँ और बुद्धि से मिल कर बनता है, आत्मा विज्ञानमय कोश से भी अलग है। जागृत और स्वप्न अवस्था में बुद्धि एक अवस्था में रहती है।

5. आनन्दमय कोश– इसके कारण शरीर, लिंग शरीर, हृदयगुहा, हिरण्यमयकोश, अनाहतचक्र आदि के नाम से भी पुकारा जाता है। मानव शरीर में वक्षस्थल के मध्य हृदय है उसको आनन्दमय कोश कहा जाता है। यही हमारी आत्मा का केन्द्र है। आत्मज्ञान सबसे बड़ा ज्ञान है, जिस अवस्था में ज्ञानी ऐसा अनुभव करता है कि समस्त पदार्थों में परमात्मा ओत-प्रोत है तथा अन्दर बाहर व्यापक है, तब सर्वत्र परमात्मा का दर्शन करने वाले उपासक को आनन्द की अनुभूति होती है। उपासक सब दुःखों से छूट जाता है।

ओ३म् विश्वदानीं सुमनसः स्याम –ऋग्वेद 6.52.5

हम सदा आनन्दित एवं प्रसन्नमन रहें। हम प्यारे प्रभु से प्रार्थना करते हैं कि हम सब सदा फूलों के समान सुप्रसन्न, समधुर एवं सुगंधित रहें। सु-मन का अर्थ है अच्छा मन। हमारा मन सदा शुद्ध, पवित्र, सुष्ठु एवं सुन्दर रहे। हमारा मन कभी भी 'कु' न हो और सदा 'सु' रहे। यदि हमारा मन पवित्र एवं पावन होगा तभी हम जीवन में अच्छे कार्य कर सकते हैं। मन को निर्मल बनाने के लिये त्रिदोष त्याग करना होगा। पहले चरित्रदोष दूसरे व्यक्ति का धनहरण, छल, कपट व परस्त्रीगमन। दूसरे व्यसन दोष, जुआ, शराब, सिग्रेट, मांस आदि तीसरे स्वभाव दोष–क्रोध, चिड़चिड़ापन आदि। सूरदास जी ''सूर सागर'' में लिखते हैं–

मेरा मन अनत कहाँ सुख पावै।
जैसे उड़ि जहाज को पच्छी, फिरि जहाज पै आवै।।

सर्वत्र पानी है। जहाज मध्य में डोल रहा है। विश्राम के लिए उसे पुनः जहाज पर ही आना पड़ता है क्योंकि उड़कर कहीं जाना भी चाहे तो कहाँ जाये। इस प्रकार प्रभुशरण को छोड़कर उड़ता हुआ मन इसी प्रकार फिर प्रभुशरण में स्वतः आ जाता है।

प्रसन्नचित रहने का वास्तविक अभिप्राय तो यह है कि व्यक्ति विपरीत परिस्थितियों की परवाह किये बिना प्रसन्न रहे। एक शायर के शब्दों में–

पूरे मर्द वे हैं जो हर हाल में खुश हैं।

जीना इसी को कहते हैं–

फूलों से घिरा रहता है चारों तरफ से फूल,
काँटों से घिरा रहता है, चारों तरफ से है फूल,
फिर भी खिला ही रहता क्या खुशमिज़ाज है ।

मन को प्रसन्न रखने का सब से पहला साधन यह है कि दूसरे के गुणों को देखो और अवगुणों को नहीं ।

यदि तुम दूसरों के दोषों को देखोगे तो तुम्हारे अंदर दोषों का भण्डार लग जायेगा । यदि गुणों को देखोगे तो गुणों का भण्डार लग जायेगा ।

यदि आप दूसरों के दोषों को देखते हो, तो आप विचार करो कि क्या आप दूध के धुले हुये हो । संसार का प्रत्येक व्यक्ति आधा अधूरा है, पूर्ण केवल परमात्मा है । जैसे सूर्य में आग है, चन्द्रमा में काला दाग़ है, समुद्र में खारा पानी है, आग में धुआँ है आदि इसी प्रकार कोई न कोई दोष सभी में है । परन्तु सभी में गुण भी हैं । अपने मन को प्रसन्न रखन के लिये दूसरों के गुणों को देखना चाहिये न कि दोषों को । डॉक्टर, अध्यापक और वकील को अन्य व्यक्तियों के दोष देखने चाहियें ।

इसके विषय में शिक्षाप्रद कहानी इस प्रकार है । एक राजा था । उसने नियम बना रखा था कि जो व्यक्ति चोरी करेगा उसे फाँसी का दण्ड दिया जायेगा । एक बार तीन व्यक्ति महल में चोरी करते पकड़े गये । राजा ने आज्ञा दी कि इन्हें फाँसी दे दो । दो व्यक्तियों को फाँसी दे दी गईं जब तीसरे व्यक्ति को फाँसी देने लगे तो उसने फाँसी देने वालों को पास बुलाकर कहा–"फाँसी तो देने लगे हो, परन्तु एक कला मेरे पास है, मैं चाहता हूँ उसे आप मुझ से सीख लो ।" सिपाहियों ने पूछा "वह कौन सी कला है ?" चोर ने उत्तर दिया–"मैं वन की एक बूटी जानता हूँ, उसे पीसकर लोहे पर डाल दो तो वह लोहा सोना बन जाता है । जितना लोहा होगा, उतना ही सोना बन जायेगा ।

सिपाहियों ने कहा, "यह कला तो सीखनी चाहिये ।" उन्होंने अपने

अफसरों से कहा। अफसरों ने मंत्रियों से कहा, मंत्रियों ने राजा से कहा। राजा ने आज्ञा दी, ''फाँसी रोक दो, बाद में दे देंगे, पहले यह कला जान लेने दो।'' चोर को दरबार में लाया गया। उसने फिर दावा किया कि वह लोहे को सोने में बदल सकता है।

राजा ने जंगल से उसकी बताई हुई बूटी मंगवाई। सारे शहर का लोहा दरबार में इकट्ठा कर लिया गया। उस व्यक्ति ने बूटी को पीसा, पीसकार बोला, ''महाराज, अब बूटी तैयार है। इसे लोहे पर डालते ही सोना बन जायेगा, परन्तु शर्त यह है कि जो व्यक्ति बूटी के चूर्ण को लोहे पर डाले, उसने कभी चोरी न की हो। मैं तो चोर हूँ, मेरे ऐसा करने से लोहा सोना नहीं बनेगा, परन्तु शेष तो यहाँ सब अच्छे लोग हैं।

राजा ने दरबार में एकत्रित लोगों की ओर देखा, किसान व जागीरदारों से कहा, ''तुम यह चूर्ण लोहे पर डालो।''

उन्होंने उत्तर दिया—''राजा साहब! आप तो जानते हैं कि हम लोग कई बार दूसरों की फसल को चुरा लेते हैं। हमसे यह कार्य कैसे होगा?''

इसके पश्चात् राजा ने दुकानदारों से कहा।

उन्होंने उत्तर दिया—''हम कम न तोले, तोल में चोरी न करें, तो हमारा काम कैसे चले? हम से यह लोहा, सोना नहीं बनेगा।''

राजा ने ठेकेदारों से कहा! उन्होंने उत्तर दिया, ''सरकार आप तो जानते हैं, हम सीमेंट के स्थान पर रेत डालते हैं, अच्छी के स्थान पर रद्दी ईंटें लगा देते हैं, रिश्वत देकर बड़े कार्य करा लेते हैं। हम से यह कार्य कैसे होगा।

राजा ने मंत्रियों को कहा। एक मंत्री ने कहा—''मैंने बचपन में एक पैंसिल चुराई थी।'' दूसरे मंत्री ने कहा, मैंने बचपन में एक दवात चुराई थी।''

कहने का भाव यह है कि सारे नगर में कोई भी ऐसा व्यक्ति न मिला, जिसने कभी चोरी न की हो।

चोर ने राजा की ओर देखते हुए कहा–"सरकार! इन लोगों को छोड़िये आप स्वयं ही चूर्ण को लोहे पर डालिये।" राजा ने उत्तर दिया–"मैं जब छोटा सा था तो मेरी माता जी ने एक बार पूजा के लिये पेड़े मंगवाये थे। माता जी ने मुझे कहा कि पूजा करने के बाद ही तुझे पेड़े दूँगी। मुझे पेड़े बहुत अच्छे लग रहे थे। अतः जब मेरी माँ स्नान करने के लिये गई तो मैंने एक पेड़ा चुराकर खा लिया। मुझ से भी यह काम नहीं होगा, क्योंकि मैं भी तो चोर हूँ।

चोर ने हाथ जोड़कर कहा–"राजा जी यदि सब लोग चोर हैं तो फिर मुझे फाँसी क्यों दी जा रही है?" इसलिए मुझे कहना है–

इस दुनियाँ में सब चोर चोर।
कोई सुरा चोर कोई सुन्दरी चोर।।
कोई धन का चोर, कोई मन का चोर।
कोई छोटा चोर, कोई बड़ा चोर।।
यह दुनियाँ है गोल-मोल बस और न बोल।

सो भाई मेरे! लोगों के अवगुण मत देखो, गुण देखो। गुणग्राही बनो। शहद की मक्खी बनो जो फूल फूल पर जाकर मिठास एकत्रित करती है। गंदगी की मक्खी मत बनो जो हर समय गंदगी ही खोजती रहती है। जोंक न बनो जो गाय के थन में लगकर भी खून ही चूसती है। जोंक नहीं अपितु बछड़ा बनो। अपने भीतर दूसरे लोगों की बुराइयाँ इकट्ठी न करो गुण एकत्रित करो। यदि आप अपनी ओर देखो तो तुम्हें मालूम होगा कि तुम में कितनी बुराइयाँ हैं। इसके विषय में कबीर ने लिखा है–

बुरा जो देखन मैं चला, बुरा न मिलया कोई।
जब दिल खोजा आपना, मुझ सा बुरा न कोई।।

धैर्य भी मन का ही गुण है। मृत्यु भयावनी होती है, परन्तु यह कायरों को भयभीत करती है। धैर्यशाली, बहादुर, मृत्यु से भयभीत नहीं होते। मन में धैर्य आ जाने पर ही वन्देमातरम् का जप करते-करते छोटे-छोटे बच्चे

हँस-हँसकर कोड़े खा लेते थे। ''भारतमाता'' की जय बोलते बोलते शहीद फाँसी के तख्ते पर चढ़ जाते थे। इसी मन के कारण महर्षि दयानंद और आर्य समाज के नाम पर गुरुदत्त, पं. लेखराम, महात्मा हंसराज, स्वामी श्रद्धानंद आदि ने अपने प्राणों की बलि दे दी। महात्मा बुद्ध, महावीर आदि इसी आत्मविश्वास के बल पर संसार को नया मार्ग दिखाया था। खुशी से संध्योच्चारण करते हुए रामप्रसाद बिस्मिल मुस्कराते फाँसी के तख्ते पर झूल गए। शांत चित्त भयंकर विष के बाद प्रसन्नता का साथ ईश्वर तेरी इच्छा पूर्ण हो। यह कह कर महर्षि दयानंद ने प्राण त्याग दिए। गोली लगने के बाद भी महात्मा गांधी का नाम, राम नाम का उच्चारण सब के लिये प्रेरणा का काम कर रहा है। सुकरात का सत्योपदेश के कारण विषपान अपूर्व धैर्य का परिचय देता है। वीर हक़ीक़त राय मौलवी साहब की लटकती तलवार देखकर भी वैदिक धर्म को छोड़ने को तैयार नहीं हुआ। यह सब मन की शक्ति का ही प्रभाव है। कठोपनिषद् में मन का बड़ा विवेकपूर्वक विवेचन इस प्रकार किया गया–

आत्मानं रथिनं विद्धि शरीरं रथमेव तु।
बुद्धिं सारथिं विद्धि मनः प्रग्रहमेव च।।
इन्द्रियाणि हयानाहुर्विषयांस्तेषु गोचरान्।
आत्मेन्द्रियमनो युक्तं भोक्तत्याहुर्मनीषिणः।। –1.3.34

आत्मा को तो रथ का स्वामी समझो और शरीर को रथ सममझो, बुद्धि को रथ चलाने वाला सारथी एवं मन को लगाम समझो। शरीर की इन्द्रियों को घोड़े कहते हैं। इन्द्रियों के विषय में ही उनके चारगाह है जिन पर इन्द्रिय रूपी घोड़े आकर्षित होते हैं। मनीषी लोग कहते हैं कि जब आत्मा, मन और इन्द्रियाँ मिलकर कोई काम करते हैं तब मानव भोक्ता कहलाता है। मन के विषय में कपिल मुनि ''सांख्य दर्शन'' में लिखते हैं–**ध्यानं निर्विषय मनः** (6.25) अर्थात् जब तक मन निर्विकार और विषयरहित नहीं हो जाता ध्यान नहीं लग सकता अतः मन को निर्विषय करने का नाम ही ध्यान है। मन की

एकाग्रता तो तभी होगी, जब इसे निर्विषय कर दिया जायेगा। समाधि द्वार पर विचार बंद हो जाते हैं और मन शून्य हो जाता है। चित्त के संकल्प-विकल्प विलीन हो जाते हैं। उस समय मन नहीं होता। जहाँ मन नहीं रहता है वहीं समाधि की अवस्था है।

मन के विषय में महाभारत की एक घटना उल्लेखनीय हैं महाभारत युद्ध समाप्त हुआ। भीष्म पितामह शरशैय्या पर लेटे थे। युद्धिष्ठिर उनसे धर्म के सम्बन्ध में प्रश्न कर रहे थे। भीष्म पितामह उत्तर दे रहे थे। उस समय द्रौपदी ने कहा–''पितामह! बुरा न माने तो एक बात मैं आप से पूछूँ? भीष्म ने कहा–''पूछो बेटी! क्या पूछना चाहती हो?'' द्रौपदी ने कहा, इस समय तो आप बहुत ऊँचे ज्ञान ध्यान की बातें कर रहे हैं, परन्तु दुर्योधन की राजसभा में जब मेरा अपमान हुआ, जब दुराचारी दुःशासन ने मेरे चीर उतारना आरम्भ किया, तक मेरे चिल्लाने और पुकारने पर भी आप क्यों चुप होकर बैठे रहे? उस समय आपका यह पवित्र ज्ञान कहाँ गया था?''

भीष्म धीरे से बोले, ''पुत्री, मैं एक मनुष्य हूँ। उस समय मैं दुर्योधन के पाप का अन्न खाता था–पाप और अत्याचार से कमाया हुआ अन्न। उस अन्न के खाने के कारण मेरी बुद्धि मारी गई थी। अब अर्जुन के तीरों ने मेरे शरीर से दूषित रक्त निकालकर उस अन्न के प्रभाव को समाप्त कर दिया है। अब मेरा मन पुनः जाग उठा है, मेरी आत्मा भी जागृत हो उठी है। गीता में श्रीकृष्ण मन के विषय में लिखते हैं–

ध्यायतो विषयान्पुंसः संगस्तेषूपजायते।
संगात्संजायते कामः कामात्क्रोधोऽभिजायते।।
क्रोधाद्भवति संमोहः, संमोहात्स्मृति विभ्रमः।
स्मृतिभ्रंशाद् बुद्धिनाशो बुद्धिनाशात्प्रणश्यति।। –2.62-63

लगाये जो महसूस अशिया से मन,
तअल्लुक बढ़े उनसे और हो लगन।

तअल्लुक से ख्वाइश का हो फिर ज़हूर,
हो ख़्वाइश से गुस्से का दिल में फ़तूर।।
हो गुस्से से फिर तीरगी रूनुमा,
असर तीरगी का है सहब–ओ ख़ता।
इसी सहब से अक़्ल हो पायमाल,
जो ज़ायल हुई अक़्ल आया ज़वाल।।

विषयों को चिन्तन करने वाले पुरुष की उन विषयों में आसक्ति हो जाती है और कामना में विघ्न पड़ने से क्रोध उत्पन्न होता है। क्रोध से मूढ़भाव उत्पन्न होता हैं अविवेक से स्मरणशक्ति भ्रमित हो जाती है और स्मृति के भ्रमित हो जाने से बुद्धि का नाश हो जाता है और बुद्धि के नाश होने से यह पुरुष अपने श्रेय साधन से गिर जाता है।

एक बार आदिशंकराचार्य के एक शिष्य ने प्रश्न किया–**'जितं जगतकेन'** किसने जगत को जीत लिया? शंकराचार्य ने उत्तर दिया–जिस व्यक्ति ने अपने मन को जीत लिया उसने सारे संसार को जीत लिया।

कबीर लिखते हैं–

राजा दुखिया रंक भी दुखिया, अधम दुखी विपरीत हो।
कहत कबीर सुनो भाई साधो, मानुष सुखी मन जीत हो।।

गुरु नानक देव जी फरमाते हैं–**मनि जीतै, जग जीतु**

–श्रीगुरुग्रंथसाहिब पृ. 6

(10) मन को नियंत्रण करने के मुख्य उपाय

मन लाडले बच्चे के समान होता है, जैसा लाडला बच्चा सदा अतृप्त रहता है, उसी प्रकार हमारा मन भी सदा अतृप्त रहता है। अतएव मन का लाड़ कम करके उसे नियंत्रण में रखना चाहिये। मन को नियंत्रण करने को अधोलिखित मुख्य उपाय हैं–

1. अभ्यास एवं वैराग्य – योगदर्शन में महर्षि पतंजलि लिखते हैं– **अभ्यास वैराग्याभ्यां तन्निरोधः** अभ्यास और वैराग्य से ही चित्त का निरोध होता है, अतएव अब इसी अभ्यास एवं वैराग्य पर विचार करना चाहिये। ''गीता'' में श्रीकृष्ण से अर्जुन ने कहा–

चंचलं हि मनः कृष्ण प्रमाथि बलवद्दृढ़म्।
तस्याहं निग्रहं मन्ये वायोरिव सुदुष्करम्।।

श्रीकृष्ण ने उत्तर दिया–

असंशयं महाबाहो मनो दुर्निग्रहं चलम्।
अभ्यासेन तु कौन्तेय वैराग्येण च गृह्यते।। –6.34-35

यह भगवान्! बेकल है पुरशोर दिल,
कि सरकश है जिद्दी है, मुँहजोर दिल।।
न काबू में आये किसी हाल में,
हवा बंद होती नहीं जाल में।।
कहा सुन के भगवान् ने ऐ कवि!
दिल इन्साँ का पुरशोर चल सही।
है मश्क और विराग में यह कमाल,
दिल आ जाये काबू में कुंती के लाल।।

क्योंकि हे कृष्ण! मन बड़ा चंचल और प्रमथन स्वभाव वाला है तथा बड़ा दृढ़ और बलवान् है, इसलिये उसका वश में करना मैं वायु की भाँति

अति दुष्कर मानता हूँ। इस प्रकार अर्जुन के पूछने पर श्रीकृष्ण बोले–हे महाबाहो, निःसंदेह मन चंचल और कठिनता से वश में होने वाला है। परन्तु हे कुन्तीपुत्र अर्जुन अभ्यास अर्थात् स्थिति के लिये बारम्बार यत्न करने से और वैराग्य से यह वश में होता है। अतः इसको अवश्य वश में करना चाहिये। जब तक संसार की वस्तुएँ सुन्दर व सुखदायक प्रतीत होती है तभी तक मन उनमें जाता है, यदि यही सब पदार्थ दोषयुक्त व दुःखदायक दिखाई देने लगे जैसे कि वास्तव में ये हैं, तो मन कभी भी उनमें लगेगा नहीं। यदि यह रमणीयता एवं सुखरूपता विषयों से हटकर प्रभु में दृष्टिगोचर हो जैसा कि वास्तव में है तो मन शीघ्र ही विषयों से हटकर प्रभु में लग जायेगा। यही वैराग्य का साधन है और वैराग्य ही तो मन जीतने का एक उत्तम उपाय है।

सारे काम उचित समय पर नियमानुसार होने चाहिये। सुबह उठकर रात्रि को सोने तक दिनभर के कार्यों के लिए एक ऐसी नियमित दिनचर्या बना लेनी चाहिये कि जिसे जिस समय में जो काम करना हो मन स्वयमेव ही उस समय उस काम में लग जाये। मन के कहने में कभी नहीं चलना चाहिये। जब तक मन वश में नहीं हो जाता तब तक इसे शत्रु समझना चाहिये जैसे शत्रु के हर काम पर निगरानी रखनी पड़ती है, वैसे ही इसके भी हर काम को बड़ी सावधानी से देखना चाहिये। मन कभी भी निकम्मा नहीं रह सकता, कुछ न कुछ काम इसको मिलना चाहिये। अतः इसको लगातार काम में लगाये रखना चाहिये ताकि यह बुराई की ओर न जाये।

इसके हर काम पर गंभीरता से विचार करना चाहिये। प्रतिदिन रात को सोने से पूर्व दिनभर के मन के कामों पर विचार करना उचित है। जो-जो संकल्प सात्विक प्रतीत हों, उनके लिये मन की सराहना करना और जो जो संकल्प राजसिक एवं तामसिक प्रतीत हो उनके लिये मन को कोसना (भर्त्सना करनी) चाहिये। इस प्रकार प्रतिदिन के अभ्यास से मन पर अच्छा काम करने और बुरे काम छोड़ने के संस्कार पड़ने लगेंगे। मन को प्रभु में लगाने से भी यह नियंत्रण में हो जाता है। ''गीता'' में श्रीकृष्ण कहते हैं–

यतो याते निश्चलति मनश्चंचलमस्थिरम् ।
ततस्ततो नियम्यैतदात्मन्येव वशं नयेत् । –6.26

मन इन्साँ का चंचल है और बे-करार,

रहे दौड़ता भागता बार-बार ।

यह भागे तो बाग़ इसकी झट मोड़ दे,

हिफ़ाज़त में फिर रूह की छोड़ दे । ।

यह स्थिर न रहने वाला और चंचल मन जिस-जिस कारण से सांसारिक पदार्थों में विचरता है उससे रोककर बार-बार परमात्मा में ही ध्यान लगाये ।

इसके अतिरिक्त प्रभुसमर्पण जिसको ईश्वरप्रणिधान और ईश्वर शरणागति के नाम से भी पुकारा जाता है, से भी मन पर नियंत्रण हो जाता है । अनन्य भक्ति से परमात्मा की शरण में जाना ही ईश्वरप्रणिधान है । इसके अतिरिक्त महर्षि पतंजलि योग दर्शन में लिखते हैं– **वीतरागविषयं वा चितम् ।**

–1.37

जिस व्यक्ति के राग द्वेष सर्वथा नष्ट हो चुके हैं, ऐसे विरक्त व्यक्ति को ध्येय बनाकर अभ्यास करने वाला अर्थात् उसके विरक्त भाव का मनन करने वाला चित भी स्थिर हो जाता है ।

2. स्वाध्याय – आर्ष ग्रंथों जैसे वेद, उपनिषद्, गीता, दर्शन, सत्यार्थप्रकाश आदि के पठन, मनन, चिन्तन से भी चित्त की वृत्तियाँ स्थिर हो जाती हैं । इससे भी मन पर नियंत्रण हो जाता है क्योंकि ऐसे ग्रंथों के अध्ययन से व्यक्ति को एक दिव्यानुभूति का अनुभव होता है ।

3. सत्संग – व्यक्ति को नित्य ही सत्संग में जाना चाहिये । इस कार्य के लिए कभी आलस्य नहीं करना चाहिये । काले कोयले को भी जब जलती हुई अंगीठी में डाला जाता है और थोड़ी देर जलते हुये कोयलों की संगत में रहता है तो उसकी भी कालिख नष्ट हो जाती है और वह गर्मी, तेजी और लाली के

साथ चमकने लगता है, परन्तु अंगीठी से नीचे गिर पड़े, जलते कोयले की संगति से दूर हो जाये, तो वह थोड़ी देर के पश्चात् फिर काला ही हो जाता है। भाव यह है कि संगत का मन पर काफी प्रभाव पड़ता है। सत्संग लगातार करते रहना चाहिये। किसी कवि ने कितना सुन्दर कहा है–

जैसा संग वैसा रंग और जैसा पानी वैसी वाणी।
जैसा अन्न वैसा मन, जैसा विचार वैसा व्यवहार।।
जैसी दृष्टि वैसी सृष्टि, जैसी करनी वैसी भरनी।

अतः सत्संग की महत्ता पर प्रकाश डालते हुए कवि 'सेवक' लिखते हैं–

आदत है अगर कहीं जाने की तो सत्संग में तुम जाया करो।
आदत है अगर कमाने की तो अच्छे कर्म कमाया करो।
आदत है अगर अपनाने की तो सब के गुण अपनाया करो।
आदत है अगर गुस्सा खाने की तो मन पर गुस्सा खाया करो।
आदत है अगर शर्माने की तो पापों से शर्माया करो।
आदत है जो 'सेवक' गाने की तो गीत प्रभु के गाया करो।।

4. सेवा – दूसरे व्यक्तियों को निष्काम भाव से सेवा करने से भी मन वश में हो जाता है, क्योंकि ऐसा करने से व्यक्ति को एक दिव्य प्रकार की शांति एवं आनन्द की अनुभूति होती है। अपाहिज, दुःखी, असहाय लोगों की निःस्वार्थ भाव से सेवा करना ही वस्तुतः प्रभु पूजन एवं महानता है। जैसे–

इबादत है दुःखियों की इमदाद करना।
जो नाशाद है उनका दिल शाद करना।।
ख़ुदा की नमाज और पूजा यही है।
जो बरबाद है उनको आबाद करना।। –वीरजी लुधियाना वाले

5. ज्ञान – जब व्यक्ति को इस बात का पता लग जाता है कि मानव सौंदर्य केवल मलमूत्र का परिणाम है तो फिर मन उस सौंदर्य पर लट्टू क्यों

होगा ? जब ज्ञान हो गया कि यह जो कुछ दिखाई देता है सब नश्वर है तो इन खिलौनों के लिये मन दुःखी नहीं होगा, तब विषय वासना नहीं सतायेगी, तब मोह, लोभ, अहंकार आदि कष्ट नहीं दे सकेगा । एक कवि ने लिखा भी है–

मन पक्षी तब लग उड़े विषय वासना माहिं ।
ज्ञान बाज की झपट में जब लग आया नाहिं ।।
मन के बंदर को बंध रखो ज्ञान की रस्सी से ।
ज्ञान की जंजीर से फिर यह आपके इशारों पर चलेगा ।।
आपके सारे काम भी कर देगा ।

6. प्रसन्नता – मन को काबू रखने के लिये यह भी आवश्यक है, व्यक्ति विकट परिस्थितियों में भी प्रसन्न रहे । इससे भी न स्वतः ही नियंत्रण में हो जाता है । एक कवि के शब्दों में–

दिल दे तो इस मिज़ाज़ का परवरदिगार दे ।
कि रंज की घड़ी खुशी से गुजार दे ।।

7. योग – योग के आठ अंग हैं–यम, नियम, आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार, धारणा, ध्यान और समाधि । ऋषियों ने लिखा हे कि योग के द्वारा भी मन पर नियंत्रण हो जाता है । मन को वश में करने का सर्वोत्तम उपाय है, प्रभु के प्रति सम्पूर्णसमर्पण । जब मानव विवेकपूर्ण ढंग से अपने मन को नियंत्रण में कर लेता है तो मन के भीतर संतोष की भावना का प्रादुर्भाव होता है । मन मंदिर में ही उस व्यक्ति को प्रभुदर्शन का अनुभव होने लगता है । संत रविदास जी ने कितना सुंदर लिखा है–

का मथुरा का द्वारिका का कासी हरिद्वार ।
रविदास खोजा दिल अपना, तब मिलिया दिलदार ।।

ऐसा व्यक्ति सम्राटों का भी सम्राट् बन जाता है क्योंकि उसे शांति, संतोष और आनन्द की अनुभूति हो जाती है जो कि भौतिक पदार्थों में नहीं है । महात्मा कबीर ने लिखा है–

गोधन, गजधन, बाजधन और रतनधान खान ।
जब आवै संतोष धन सब धन धूरि समान ।।

वस्तुतः सम्राट् कौन होता है, इसके विषय चीनी संत कन्फयूशियस के जीवन की एक महत्त्वपूर्ण घटना का उल्लेख इस प्रकार किया जाता है । कन्फयूशिंयस एक वन में बैठे थे । एक सम्राट् उधर से आ रहा था । सम्राट् ने पूछा–''तुम कौन हो?'' कन्फयूशियस ने उत्तर दिया–''मैं सम्राट् हूँ ।'' सम्राट् ने बड़ी हैरानी से पूछा–''तुम कैसे सम्राट् हो? जंगल में बैठे हो, फिर सम्राट् कैसे? इस पर कन्फयूशियस ने पूछा–''तुम कौन हो?''

इस पर सम्राट् बोला–''मैं असली सम्राट् हूँ । मेरे पास सेवक हैं, सेना है, ठाट बाट हैं । तुम अकेले जंगल में बैठे हो और स्वयं को सम्राट् मान रहे हो? कितना मोह व कितनी आत्मभ्रांति । बताओ तुम सम्राट् कैसे हुये? इसका उत्तर कन्फयूशियस ने इस प्रकार दिया–

सेवक उसे चाहिये जो आलसी होता है । मैं आलसी नहीं हूँ, इसलिये मेरे साम्राज्य में सेवक की आवश्यकता नहीं हैं सेना उसको चाहिये जिसके शत्रु हों । दुनियाँ में मेरा कोई शत्रु नहीं है, अतः मेरे साम्राज्य में सेना की आवश्यकता नहीं है । धन उसे चाहिये जो ग़रीब हो मैं ग़रीब नहीं हूँ, इस कारण मुझे धन की आवश्यकता नहीं ।

यह सुनकर सम्राट् का सिर झुक गया ।

8. भोगों में वैराग्य – जब तक संसार की वस्तुएं सुन्दर और सुखप्रद मालूम होती हैं तभी तक मन उनमें जाता है, यदि यही सब पदार्थ दोषयुक्त और दुःखप्रद दीखने लगें (जैसे कि वास्तव में ये हैं) तो मन कदापि इनमें नहीं लगेगा । यदि यह रमणीयता और सुखरूपता विषयों में हटकर परमात्मा में दिखायी देने लगे (जैसा कि वास्तव में है) तो यही मन तुरन्त विषयों से हटकर परमात्मा में लग जाये । यही वैराग्य का साधन है और वैराग्य ही मन जीतने का एक उत्तम उपाय है । सच्चा वैराग्य तो संसार के इस दीखने वाले स्वरूप का सर्वथा अभाव और उसकी जगह परमात्मा का नित्य भाव प्रतीत होने में है ।

9. नियम से रहना – मन को वश में करने में नियमानुवर्तिका से बड़ी सहायता मिलती है। सारे काम ठीक समय पर नियमानुसार होने चाहिये। प्रातःकाल बिछौने से उठकर रात को सोने तक दिन भर के कार्यों की एक ऐसी नियमित दिनचर्या बना लेनी चाहिये कि जिससे जिस समय जो कार्य करना हो, मन अपने-आप स्वभाव से ही उस समय उस कार्य में लग जाये। संसार साधन में तो नियमानुवर्तिता से लाभ होता ही है, परमार्थ में भी इससे बड़ा लाभ होता है। अपने जिस इष्ट स्वरूप के ध्यान के लिये प्रतिदिन जिस स्थान पर, जिस आसन पर, जिस आसन से, जिस समय और जितने समय सुखपूर्वक बैठा जाये उसमें किसी दिन भी व्यतिक्रम नहीं होना चाहियें पाँच मिनट का भी नियमित ध्यान अनियकित अधिक समय के ध्यान से उत्तम है।

आज दस मिनट बैठे, कल आध घंटे, परसों बिल्कुल लाँघा, इस प्रकार के साधन से साधक को सिद्धि कठिनता से मिलती है। जब पाँच मिनट का ध्यान नियम से होने लगे तब दस मिनट का करे, परन्तु दस मिनट का करने के बाद किसी दिन भी 9 मिनट का नहीं होना चाहिये। इसी प्रकार स्थान, आसन, समय, इष्ट और मन्त्र का बार-बार परिवर्तन नहीं करना चाहिये। इस तरह की नियमानुवर्तिता से भी मन स्थिर होता हैं नियमों का पालन खाने-पीने, पहनने, सोने और व्यवहार करने सभी में होना चाहिये। नियम अपने अवस्थानुकूल शास्त्रसम्वत बना लेने चाहिये।

10. मन की क्रियाओं पर विचार – मन के प्रत्येक कार्य पर विचार करना चाहिये। प्रतिदिन रात को सोने से पूर्व दिनभर के मन के कार्यों पर विचार करना उचित है। यद्यपि मनकी सारी उधेड़-बुन का स्मरण होना बड़ा कठिन है, परन्तु जितनी याद रहे उतनी ही बातों पर विचार कर जो-जो संकल्प सात्विक मालूम दें, उनके लिये मन की सराहना करना और जो-जो संकल्प राजसिक और तामसिक मालूम पड़े, उनके लिये मन को धिकारना चाहिये। प्रतिदिन इस प्रकार के अभ्यास से मन पर सत्कार्य करने के और असत्कार्य छोड़ने के संस्कार जमने लगेंगे, जिससे कुछ ही समय में मन बुराइयों से बचकर भले-भले कार्यों में लग जायेगा।

मन पहले भले कार्य वाला होगा, तब उसे वश में करने में सुगमता

होगी । कुसंग में पड़ा हुआ बालक जब तक कुसंग नहीं छोड़ता; तब तक, उसे कुसंगियों से बुरी सलाह मिलती रहती है । इससे उसका वश में होना कठिन होता है, परन्तु जब कुसंग छूट जाता है तब उसे बुरी सलाह नहीं मिल सकती । दिन-रात घर में उसको माता-पिता के सदुपदेश मिलते हैं, वह अच्छी-अच्छी बातें सुनता है, तब फिर उसके सुधर जाने पर माता-पिता के आज्ञाकारी होने में विलम्ब नहीं होता । इसी तरह यदि विषय-चिन्तन करने वाले मन को कोई एक साथ ही सर्वथा विषय रहित करना चाहे तो वह नहीं कर सकता । पहले मन को बुरे चिन्तन से बचाना चाहिये; जब वह परमात्मा सम्बन्धी शुभ चिन्तन करने लगेगा, तब उसको वश करने में कोई कठिनाई नहीं होगी ।

11. मन के कहने में न चलना – मन के कहने में नहीं चलना चाहिये । जब तक यह मन वश में नहीं हो जाता तब तक इसे अपना घोर शत्रु मानना चाहिये । जैसे शत्रु के प्रत्येक कार्य पर निगरानी रखनी पड़ती है, वैसे ही इसके भी प्रत्येक कार्य को सावधानी से देखना चाहिये ।

12. मन को सत्कार्य में संलग्न रखना – मन कभी निकम्मा नहीं रह सकता । कुछ-न-कुछ काम इसको मिलना ही चाहिये । अतःएव इसे निरन्तर काम में लगाये रखना चाहिये ।

13. मन को परमात्मा में लगाना – श्रीकृष्ण ने कहा है–

यतो यतो निश्चरति मनश्चंचलमस्थिरम् ।
ततस्ततो नियम्यैतदात्मन्येव वशं जयेत् ।। –गीता 6.26

यह चंचल और अस्थिर मन जहाँ-जहाँ दौड़कर जाये वहाँ-वहाँ से हटाकर बार-बार इसे परमात्मा में ही लगाना चाहिये ।

धीरे-धीरे अभ्यास करता हुआ उपरामता को प्राप्त हो । धैर्ययुक्त बुद्धि से मन को परमात्मा में स्थिर करके और किसी भी विचार को मन में न आने दे । कवि वृन्द ने उचित ही कहा है–

करत-करत अभ्यास के जड़मति होय सुजान ।
रस्सी आवत जात है सिल पर पडत निशान ।।

जब अभ्यास बल बढ़ेगा वह संसार से फुरसत मिलते ही तुरन्त

परमात्मा में लग जायेगा। अभ्यास दृढ़ होने पर तो यह परमात्मा के ध्यान से हटाये जाने पर भी न हटेगा। मन चाहता है सुख। जब तक इसे वह सुख नहीं मिलता, विषयों में सुख दीखता है, तब तक यह विषयों में रमता है। जब अभ्यास से विषयों में दुःख और परमात्मा में परम सुख प्रतीत होने लगेगा। जब यह स्वयं ही विषयों को छोड़कर परमात्मा की ओर दौड़ेगा।

14. एकतत्त्व का अभ्यास करना – योगदर्शन में महर्षि पतंजलि लिखते हैं–

तत्प्रतिषेधार्थमेकतत्त्वाभ्यासः। –सभाधिपाद 32

चित्त का विक्षेप दूर करने के लिए पाँच तत्त्वों में से किसी एक तत्त्व का अभ्यास करना चाहिये। एक तत्त्व के अभ्यास का अर्थ ऐसा भी हो सकता है कि किसी एक वस्तु की या किसी मूर्ति विशेष की तरफ एक दृष्टि से देखते रहना, जब तक आँखों की पलक न पड़े या आँखों में जल न आ जाये, तब तक उसे एक ही चिह्न की तरफ देखते रहना चाहिये, चिह्न धीरे-धीरे छोटा करते रहना चाहिये। अन्त में उस चिह्न को बिल्कुल ही हटा देना चाहिये। दृष्टि स्थिरा यत्र विनावलोकनम्– अवलोकन न करने पर भी दृष्टि स्थिर रहे। ऐसा हो जाने पर चित्त विक्षेप नहीं रहता। इस प्रकार प्रतिदिन आधे-आधे घंटे भी अभ्यास किया जाये तो मन के स्थिर होने में अच्छी सफलता मिल सकती है। इसी प्रकार दोनों स्रुवों के बीच में दृष्टि जमाकर जब तक आँखों में जल न आ जाये तब तक देखते रहने का अभ्यास किया जाता है, इससे भी मन निश्चल होता है, इसी को त्राटक कहते हैं। कहने की आवश्यकता नहीं कि इस प्रकार के अभ्यास में नियमित रूप से जो जितना अधिक समय दे सकेगा उसे उतना ही अधिक लाभ होगा।

15. नाभि या नासिकाग्र में दृष्टि स्थापन करना – नित्य नियमपूर्वक पद्मासन या सुखासन से सीधा बैठकर नाभि में दृष्टि जमाकर जब तक पलक न पड़े तब तक एक मन से देखते रहना चाहिये। ऐसा करने से शीघ्र ही मन स्थिर होता है। इसी प्रकार नासिका के अग्र भाग पर दृष्टि जमाकर बैठने से भी चित्त निश्चल हो जाता है। इससे ज्योति के दर्शन भी होते हैं।

16. एकाग्र अवस्था – जब चित्त इन्द्रियद्वार से बाह्य विषयों की ओर प्रवृत्त न होकर एक मात्र अध्यात्म के चिन्तन में रहता है, यह चित्त की एकाग्र अवस्था कही जाती है। यहाँ चित्त में रजोगुण-तमोगुण का आंशिक उद्रेक नहीं रहता। इस अवस्था में पहुँच योगी के लिये आवश्यक है,वह प्रयत्नपूर्वक अभ्यास द्वारा चित्त की इस अवस्था को ऐसा ही बनाये रखने में सतर्क रहे।

17. ध्यान – तत्र प्रत्य यैकतानाता ध्यानम् – धारणा में चित्त को जिस प्रदेश में लगाया गया हो उस देश में प्रीति की प्रवाहता ध्यान है। धारणा से चित्त जिस वृत्ति मात्र से ध्येय में लगता है जब वह वृत्ति इस प्रकार समान प्रवाह से लगातार उदय होती रहे कि दूसरी कोई वृत्ति बीच में न आये उसे ध्यान कहते हैं। अर्थात् धारणा का समय जब तक अधिक समय तक परिपक्य होकर उसी ध्येय स्थान पर रुकी रहे उसे ही ध्यान कहते हैं।

18. मैत्री-करुणा-मुदिता-उपेक्षा का व्यवहार – योगदर्शन में महर्षि पतंजलि एक उपाय यह भी बतलाते हैं–

मैत्रीकरुणामुदितोपेक्षाणां सुखदुःखपुण्यापुण्यविषयाणां भावनातश्चित्त प्रसादनम्। –समाधिपाद 33

सुखी मनुष्यों से प्रेम, दुःखियों के प्रति दया, पुण्यात्माओं के प्रति प्रसन्नता और पापियों के प्रति उदासीनता की भावना से चित्त प्रसन्न होता है।

(1) जगत् के सारे सुखी जीवों के साथ प्रेम करने से चित्त का ईर्ष्या-मल दूर होता है, डाह की आग बुझ जाती है। संसार में लोग अपने को और अपने आत्मीय स्वजनों को सुखी देखकर प्रसन्न होते हैं, क्योंकि वे उन लोगों को अपने प्राणों के समान प्रिय समझते हैं, यदि यही प्रिय भाव सारे संसार के सुखियों के प्रति अर्पित कर दिया जाये तो कितने आनन्द का कारण हो। दूसरे को सुखी देखकर जलन पैदा करने वाली वृत्ति का नाश हो जाये।

(2) दुःखी प्राणियों के प्रति दया करने से पर-अपकार रूप चित्त मल नष्ट होता है। व्यक्ति अपने कष्टों को दूर करने के लिये किसी से भी पूछने

की आवश्यकता नहीं समझता, भविष्य में कष्ट होने की सम्भावना होते ही पहले से उसे निवारण करने की चेष्टा करने लगता है। यदि ऐसा ही भाव जगत् के सारे दुःखी जीवों के साथ हो जाये तो अनेक लोगों के दुःख दूर हो सकते हैं। दुःखपीड़ित लोगों के दुःख दूर करने के लिये अपना सर्वस्व न्यौछावर कर देने की प्रबल भावना से मन सदा ही प्रफुल्लित रह सकता है।

(3) धार्मिकों को देखकर हर्षित होने से दोषारोप नामक मन का असूया-मल नष्ट होता है, साथ ही धार्मिक पुरुष की भाँति चित्त में धार्मिक वृत्ति जाग्रत् हो उठती है। असूया के नाश से चित्त शान्त होता है।

(4) पापियों के प्रति उपेक्षा करने से चित्त का क्रोध रूप मल नष्ट होता है। पापों का चिन्तन न होने से उनके संस्कार अन्तःकरण पर नहीं पड़ते। किसी से भी घृणा नहीं होती। इससे चित्त शान्त रहता है।

इस प्रकार इन चारों भावों के बार-बार अनुशीलन से चित्त को राजस, तामस वृत्तियाँ नष्ट होकर सात्विक वृत्ति का उदय होता है और उससे चित्त प्रसन्न होकर शीघ्र ही एकाग्रता लाभ कर सकता है।

19. श्वास के द्वारा नाम जप – मन को रोककर प्रभु में लगाने का एक अत्यन्त सुलभ और आशंकारहित उपाय और है, जिसका अनुष्ठान सभी कर सकते हैं, वह है—आने-जाने वाले श्वास-प्रश्वास की गति पर ध्यान रखकर श्वास के द्वारा ओ३म् के नाम का जप करना। यह अभ्यास बैठते-उठते, चलते-फिरते, सोते-जागते, खाते-पीते हर समय प्रत्येक अवस्था में किया जा सकता है। इसमें श्वास जोर-जोर से लेने की भी कोई आवश्यकता नहीं। श्वास की साधारण चाल के साथ ही साथ नाम का जप किया जा सकता है। इसमें लक्ष्य रखने से ही मन एकाग्र होकर ओ३म् का जप कर सकता है। श्वास के ओ३म् का जप करते समय चित्त में प्रसन्नता का अनुभव होता है और मन आनन्द विभोर हो उठता है। आनन्द रस से छका हुआ अन्तःकरण रूपी पात्र मानो छलक पड़ता हों यदि इतने आनन्द का अनुभव न हो तो आनन्द की भावना ही करनी चाहिये। इसी के साथ प्रभु को अपने अत्यन्त

समीप जानकर उनके स्वरूप का ध्यान करना चाहिये। मानो उनके समीप होने का प्रत्यक्ष अनुभव हो रहा है। इस भाव से संसार की सुधि भुलाकर मन को परमात्मा में लगाना चाहिये।

20. ईश्वर प्रणिधान – परमपिता परमात्मा में अपने को और अपने कार्यों को अर्पण कर देना। इससे आत्मतत्त्व का साक्षात्कार तथा योगाभ्यास के अवसरों पर आने वाले विघ्न-बाधा आदि का अभाव हो जाता है। ईश्वर प्रणिधान में यही बात है।

इसके विषय में महाराज जनक के जीवन की एक घटना इस प्रकार है कि महाराज जनक से एक बार किसी ने प्रश्न पूछा। जनक एक वृक्ष के पास खड़े थे, बोले–''यह वृक्ष मुझे छोड़ दे तो आपके प्रश्न का उत्तर दूँ।''

पूछने वाले ने कहा–''महाराज! आप ज्ञानी होकर मूर्खों की सी बातें करते हैं। वृक्ष ने आपको नहीं पकड़ रखा, आपने वृक्ष को पकड़ रखा है। यह वृक्ष तो जड़ है, यह आपको क्या पकड़ेगा?''

जनक ने कहा–''तू ठीक कहता है भाई! यह वृक्ष जड़ है। इसने नहीं, मैंने इसको पकड़ रखा है। परन्तु याद रख, मन भी तो जड़ है। उसने तो तुम्हें पकड़ नहीं रखा। फिर मुझसे कयों कहते हो कि वह छोड़ता नहीं?''

यह है साधन मन को वश में करने का। मन की वास्तविकता को समझो। यह जड़ है। उसमें कोई शक्ति नहीं। शक्ति तुम्हारे अन्दर है। ऐसा समझोगे तो मन वश में अवश्य हो जायेगा।

21. मन के कार्यों को देखना – मन को वश में करने का एक बड़ा उत्तम साधन है 'मन से अलग होकर निरन्तर मन के कार्यों को देखते रहना।' जब तक हम मन के साथ मिले हुए हैं। तभी तक मन में इतनी चंचलता है। जिस समय हम मन के द्रष्टा बन जाते हैं, उसी समय मन की चंचलता मिट जाती है। वास्तव में तो मन से हम सर्वथा भिन्न ही हैं। किसी समय मन में क्या संकल्प होता है। इसका पूरा पता हमें रहता है। बम्बई में बैठे हुए एक व्यक्ति के मन में कलकत्ते के किसी दृश्य का संकल्प होता है, इस बात को वह अच्छी तरह जानता हैं यह निर्विवाद बात है कि जानने या देखने वाला जानने की या

देखने की वस्तु से सदा अलग होता है । आँख को आँख नहीं देख सकती, इस न्याय से मन की बातों को जो जानता या देखता है वह मन से सर्वथा भिन्न है, भिन्न होते हुए भी वह अपने को मन के साथ मिला देता है, इसी से उसका जोर पाकर मन की उदण्डता बढ़ जाती हैं यदि साधक अपने को निरन्तर अलग रखकर मन की क्रियाओं का द्रष्टा बनकर देखने का अभ्यास करे तो मन बहुत ही शीघ्र संकल्परहित हो सकता है ।

22. प्रभु सुमिरन – प्रभु के गुण, कर्म, स्वभाव का स्मरण, मनन और चिन्तन करना । जब साधक आकाश भूत पर विचारा समाधि लगाता है तो उसको आकाश भूत के शब्द की सिद्धि होती है, ओंकार ध्वनि और ईशभक्ति के भजन प्रस्फुटित होने लगते हैं इस प्रकार साधक जब पाँचों भूतों को सिद्ध कर लेता है तो उसका शरीर हल्का-तेजस्वी और नीरोग हो जाता है । इसे जरा व मृत्यु नहीं सताती ।

इस प्रकार से मन को रोककर प्रभु में लगाने के अनेक साधन और युक्तियाँ हैं । इनमें से या अन्य किसी भी युक्ति से किसी प्रकार से भी मन को विषयों से हटाकर प्रभु में लगाने की चेष्टा करनी चाहिये । मन के स्थिर किये बिना अन्य कोई भी अवलम्बन नहीं । जैसे चंचल जल में रूप विकृत दीख पड़ता है, उसी प्रकार चंचल चित्त में आत्मा का यथार्थ स्वरूप प्रतिबिम्बित नहीं होता । परन्तु जैसे स्थिर जल में प्रतिबिम्ब जैसा होता है वैसा ही दीखता है, इसी प्रकार केवल स्थिर मन से ही आत्मा का यथार्थस्वरूप स्पष्ट प्रत्यक्ष होता है । अतएव प्राणपन से मन को स्थिर करने का प्रयत्न करना चाहिये । अब तक जो इस मन को स्थिर कर सके हैं वे ही उस प्रभु के समीप पहुँच सकते हैं । इसी का अपना जन्म और जीवन सफल हो सकता है । जिसने एक बार भी उस 'अनूपरूपशिरोमणि' के दर्शन का संयोग प्राप्त कर लिया वही धन्य हो गया । उसके लिये उस सुख के सामने और सारे सुख फीके पड़ जाते हैं । उसके सामने और कोई सुख नहीं है । क्योंकि आनन्द प्रभु का पर्यायवाची है ।

अंततः मन के विषय में एक वाक्य में इतना ही कहना होगा कि मानव

ही मन है और मन को अभ्यास, वैराग्य और ज्ञान के द्वारा नियंत्रण में किया जा सकता है, फिर यह उसी ओर लग जाता है । जैसे अध्यापक के बिना स्कूल बेकार है, डॉक्टर के बिना अस्पताल बेकार है, उसी प्रकार मन की शान्ति के बिना जीवन बेकार है ।

मन के विषय में एक दृष्टांत इस प्रकार प्रस्तुत किया जाता है कि सेठ अमीचन्द के पास अपार धन-दौलत थी । उसे हर तरह का आराम था लेकिन उसके मन को शांति नहीं मिल पाती थी । हर पल उसे कोई न कोई चिंता परेशान किए रहती थी ।

एक दिन वह कहीं जा रहा था तो रास्ते में उसकी नज़र एक आश्रम पर पड़ी । वहाँ उसे किसी साधु के प्रवचनों की आवाज़ सुनाई दी । आवाज़ से प्रभावित होकर अमीचन्द आश्रम के अन्दर गया और बैठ गया । प्रवचन समाप्त होने पर सभी व्यक्ति अपने-अपने घरों को चले गए लेकिन वह वहीं बैठा रहा । उसे देखकर संत बोले, ''कहो, तुम्हारे मन में क्या जिज्ञासा है जो तुम्हें परेशान कर रही है?'' इस पर अमीचन्द बोला, ''मेरे जीवन में शान्ति नहीं है ।'' यह सुनकर संत बोले, ''घबराओ नहीं तुम्हारे मन की सारी अशान्ति अभी दूर हो जायेगी । तुम आँखें बंद करके ध्यान की मुद्रा में बैठो ।''

संत की बात सुनकर ज्यों ही अमीचन्द ध्यान की मुद्रा में बैठा त्यों ही उसके मन में इधर-उधर की बातें घूमने लगीं और उसका ध्यान उचट गया ।

सेठ बोला, ''बाबा मेरा ध्यान में मन ही नहीं लग रहा है ।''

संत कुछ देर चुप रहे फिर बोले, ''चलो जरा आश्रम का एक चक्कर लगाते हैं ।'' इसके बाद वे आश्रम में घूमने लगे । अमीचंद ने एक सुन्दर वृक्ष देखा और उसे हाथ लगाया । हाथ लगते ही उसके हाथ में एक कांटा चुभ गया और वह बुरी तरह चिल्लाने लगा ।

यह देखकर संत वापस अपनी कुटिया में आए । कटे हुए हिस्से पर लेप लगाया । कुछ देर बाद वह सेठ से बोले, ''तुम्हारे हाथ में जरा सा कांटा चुभा

तो तुम बेहाल हो गए। सोचो कि जब तुम्हारे अन्दर काम, क्रोध, लोभ, मोह, अहंकार रूपी बड़े-बड़े कांटे छिपे हुए हैं तो तुम्हारा मन भला शांत कैसे हो सकता है?'' संत की बात से सेठ अमीचन्द को अपनी गलती का अहसास हो गया। वह संतुष्ट होकर वहाँ से चला आया। जैसे मुनि श्री तरुणसागर लिखते हैं–

आदमी का तन तो बूढ़ा हो जाता है, मगर मन तब भी युवा बना रहता है और हाँ, शरीर के बूढ़ा होने से मन की वासनाएँ बूढ़ी नहीं हो जाती बल्कि बुढापे में वासनाएँ भी अधिक उग्र हो जाती हैं। जैसे पके आम को पहले लोग धीरे-धीरे चूसते हैं मगर ज्यों-ज्यों उसका रस समाप्त होने लगता है तो लोग उसे और कसकर चूसते हैं। असली समस्या शरीर और इन्द्रियाँ नहीं है बल्कि मन है इन्द्रियाँ तो केवल स्विच हैं। मेन-स्विच तो मन ही है। मेन-स्विच बंद कर दें तो स्विच स्वतः ही काम करना बंद कर देते हैं।

–कड़वे प्रवचन (भाग-1, पृ. 84)

लेखक द्वारा प्रकाशित एवं निःशुल्क वितरित पुस्तकों की सूची :–

1. रामचरितमानससार
2. गीतासार
3. उपनिषद्सार
4. सत्यार्थप्रकाशसार
5. भक्ति
6. सुखीजीवन
7. आत्मबोध
8. वेदवाणी
9. वैदिकसाहित्य
10. अमृतवाणी
11. महर्षि दयानंद
12. स्वामी विवेकानंद
13. शरणागति
14. वैदिक रामायण
15. क्या आप जानते हैं ?
16. शेर-ओ-शायरी
17. ओ३म्
18. गायत्रीरहस्य

लेखक द्वारा अप्रकाशित पुस्तकों की सूची :–

1. वैदिक मनुस्मृति
2. वैदिक उपनिषद्वाणी
3. वैदिक दर्शनवाणी
4. वैदिक महाभारत
5. वैदिक गीता
6. अमर धर्मग्रंथ
7. अमर नीतिग्रंथ
8. पुराणपरिचय
9. ईश्वरसिद्धि
10. राष्ट्रभाषा हिन्दी
11. मर्यादा पुरुषोत्तम श्रीराम
12. महावीर हनुमान
13. योगिराज श्रीकृष्ण
14. आदिशंकराचार्य
15. आचार्य चाणक्य
16. दस गुरु
17. आर्यसमाज के महामानव
18. स्वामी रामतीर्थ
19. संस्कार
20. गीतांजलि
21. आर्यसमाज
22. ज्ञानामृत
23. यज्ञ
24. संत
25. संतवाणी
26. आत्मकथा
27. भतृहरिशतक
28. ब्रह्मचर्य
29. गृहस्थ
30. सामान्य हिन्दी (भाग I-II) (सब कक्षाओं के लिये)
31. धर्म
32. कर्म
33. मन
34. सुखी कौन?
35. भारत के क्रांतिकारी
36. भारत के भक्त
37. Great Thoughts
38. Great Indians
39. Great Thinkers
40. Great Scientists
41. General English (Part I to V) (For All Classes)

कृपया पाठकगण इस ओर भी ध्यान दें कि इनकी निम्नलिखित पुस्तकों को इनकी वैब साईट **www.dpkapoorbooks.co.in** पर भी देखा जा सकता है।

1. अमृतवाणी
2. आर्यसमाज
3. आर्यसमाज के महामानव
4. आदिशंकराचार्य
5. आचार्य चाणक्य
6. अमर नीतिग्रंथ
7. अमर धर्मग्रंथ
8. दस गुरु
9. ईश्वरसिद्धि
10. गायत्रीरहस्य
11. ज्ञानामृत
12. गीतांजलि
13. क्या आप जानते हैं ?
14. मर्यादा पुरुषोत्तम श्रीराम
15. महावीर हनुमान
16. महर्षि दयानंद
17. ओ३म्
18. पुराणपरिचय
19. राष्ट्रभाषा हिन्दी
20. संस्कार
21. संत
22. संतवाणी
23. स्वामी विवेकानंद
24. स्वामी रामतीर्थ
25. शरणागति
26. शेंर-ओ-शायरी
27. सामान्य हिन्दी (भाग **I-II**) (सब कक्षाओं के लिये)
28. वैदिकसाहित्य
29. वैदिक उपनिषद्वाणी
30. वैदिक दर्शनवाणी
31. वैदिक रामायण
32. वैदिक महाभारत
33. वैदिक गीता
34. योगिराज श्रीकृष्ण
35. यज्ञ
36. आत्मकथा
37. भर्तृहरिशतक
38. ब्रह्मचर्य
39. गृहस्थ
40. वैदिक मनुस्मृति
41. धर्म
42. कर्म
43. मन
44. सुखी कौन?
45. भारत के क्रांतिकारी
46. भारत के भक्त
47. **Great Thoughts**
48. **Great Indians**
49. **Great Thinkers**
50. **Great Scientists**
51. **General English (Part I to V) (For All Classes)**